दलितों के गायक

और

बुद्धिजीवी श्रमिकों के

प्रतिनिधि - कवि

श्री शिवमंगलसिंह 'सुमन'

को

एक बात

इन कहानियोंमे कुछ सच्चाई है जिसे अनुभवी समझेगा। इनका उद्देश्य न तो कलाका स्तवन है, न साहित्यकी सेवा, और न ये किसी 'कस्मै देवाय हविषा विधेम' के-से आदर्शसे ही अनुप्राणित है। साफ साफ ये कहानियाँ पेटकेलिए लिखीगई हैं। पर उनकी बुनियादका कण-कण सही है, रक्तसे सना।

पिलानी, —लेखक

६--४--१६४४

सूची

मौतकी खोजमें

अखीर मईका महीना था। मैदानोमे लू बरसती थी, आग बलती थी, दुपहरी नाचती थी। मैदानोके श्रीमान् पहाड़ोमे रमे थे, जहाँ परियोंका साया था, शराबकी दौर थी। बिहारके धनी और शानदार नागरिक रॉचीकी छोटी ऊँचाईपर तम्बाकूकी चुस्कियॉ लेरहे थे, मोटे परदोके पीछे, खसकी ठण्डी टट्टियोकी आडमे। मैं डोरडेके जिस महानुभावके यहॉ ठहरा था उनकी बर्दाश्त कुछ कम थी। खिडकियोंके मोटे हरे परदे और खसकी ठण्डी टट्टियॉ उनकी गर्मी मिटा न सकती थीं। उसे शान्त करनेकेलिए उन्होंने एक और उपायका सहारा लिया—करीब पॉच मनकी बर्फ की चट्टान वे छतके पङ्खेके ठीक नीचे रखवा देते, फिर पङ्खा पूरी रफ्तारसे खुल जाता। उसकी फट-फट आवाज सन्नाटेको भर देती और उसके डैनोंकी छाया जैसे बर्फको चमकीली सतहपर तैरती रहती। फिर शीशेके स्वच्छ ग्लासमे सुनहरी झाग उठाती लाल हाला और उसको दौरके साथ बजनेवाले घुँघरू, और जाने क्या-क्या! मैं उनके पास अधिक ठहर न सका। छोटा नागपुरकी सूखी पहाड़ियोंसे उतरही पडा, जङ्गलोंमे होकर दौडती चक्करदार राहसे, घाटोंसे होता, नीचेके मैदानोमे।

जलती रेत उडती थी वहॉ, उन धूपसे झुलसे मैदानोंमें। रॉची-रोडके स्टेशनपर कुछ अधिक भीड़ न थी। असलमे इन दिनो रॉची जाने-वालोकी अपेक्षा वहॉसे लौटनेवालोकी तादाद कम होती है। कुछ व्यवसायी, कुछ गरीब, कुछ तड़क-भड़क वाले पाएदार जीवही आते जाते रहते हैं।

आठ बज चुके थे। पासकी पहाड़ियॉ अन्धेरेमे मुँह छिपाये प्यासी-सी सूखी-झुलसी खडी थी, पर अभी मरे दिनकी जलती मार उनपर जारी थी। रेत उडती थी और लू रह-रहकर झुलस देती थी। दिनकी तपनके मारेहुए

रातका आसरा करते हैं; उसके चॉद - तारोंका, मगर आजकी तपिश कुछ असाधारण थी। चॉद-तारों पर गर्दकी तह जमी थी, आसमान तॉबे-सा लगताथा, कुछ धुधला धुंधला। रह-रहकर पासकी झाड़ियोंके पीछेसे निकल-निकल स्यार दूरके अन्धेरेमे खोजाते।

मैंने खाली बर्थपर विस्तर डाल उसे खोलदिया। पहले, जब डब्बेमे घुसा था, कुछ बौखलाई-सी ऑखे खुली, उन्होंने कुछ क्रूर हो देखा—द्वेष नही, आदतसे—फिर झुक पड़ीं। 'आगे जाइये, जगह नही है'—साफ-साफ न सुन पड़ा, पर उसकी टूटी-कॉपती प्रतिध्वनि सुन पडी, जिसकी आवाज खुद शरमाई-सी थी। क्योंकि बर्थके बर्थ खाली थे। और लोग बेवक्त अध-खुली ऑखोसे देखने ऊँघनेका बहाना किए लम्बे पडे थे। आवाज, जो आई थी वह, आदतकी मारी थी। कुत्तेने जो आदमकी औलादसे बहुत-कुछ सीखा तो कम-से-कम अपनी एक लत तो उसे दे ही दी—अपनी जातके व्यक्तिको देखकर एकबार गुर्रा उठनेकी! वफादार कुत्तेकी यह अपने आकाको देन है जिसका इस्तमाल इन्सान वक्त-बेवक्त हमेशा करता है चाहे उससे उसका काम निकले या न निकले। आखिर कुत्तेके गुर्रा देनेसे क्या होता है? न तो उसके पाससे निकलनेवाला इन्सानही उसकी परवाह करता है और न उसकी जातका कुत्ता ही। सो मैंने भी एकबार भवे तरेर कर डब्बेमें बैठे अपने गुर्राते बन्धुओंको देखा, फिर उपेक्षा-पूर्वक उनकी ओर से मुँह फेरता कुलीको हिदायत करता बर्थपर फैले अपने बिस्तर पर बैठ गया। अधमिची, घूरती नजरोंपर लानत फेकता अपने भारसे उन्हे कुचलता हुआ!

सिगारकी एक कश खीच मैं लेटगया। धुएँकी अँगूठियाँ ऐंठ-ऐंठ कर डब्बेकी छतसे टकरातीं, फिर टूट-सी जाती। देरतक कुछ गुनता रहा। रॉचीके अपने श्रीमान् मेजबानकी खसकी टट्टियोंकी आड़की दुनियाँ इस ज़मीनकी दुनियाँसे भिन्न थी, सर्वथा दूसरी। मेरे विचारोंकी कड़ियाँ देर

तक धुएँकी कडियोसे उलझती, टकराती-टूटती रही, पर न जानसका कब धुएँ और विचारोकी शृंखला धक-धक करती बदहवास दौडती रेलकी आवाज़में खोगई। जब जागा पौ फटचुकी थी और गर्मीकी सूचना देरही थी।

बीडियाँ चारों ओर जलरही थीं। इधर तीसरे दर्जेमे अधिकतर बीडीही चलती है, गो कहीं-कही गाँजेकी चिलममे आगकी ऊँची लहरभी ललकरही थी। डब्बा भरगया था। लोग कब आकर भरगये कुछ पता न चला। फिर याद आई कि बाहरसे आनेवाले लोगोमेंसे कुछने सोतेहुओंपर अपने पैरोंका भी अधिकार जताया था। उनकी कुछ तनी तानेजनी अभीतक कानोंमे पुरानी स्मृतिकी तरह हल्की गूँज उठारही थी। और सहसा याद आया कि तब आधीरातके समय नीदमे खलल पडनेके कारण मैं भी कुछ झल्ला उठा था। साथही कुछ सहमा भी था कि वे ही मुसाफिर अगर कही अधिकारकी धौंस जतातेहुए मेरी ओर पिले तो कम-से-कम जन-सेवक होनेके नाते तो मुझे उनकी चेतावनीकी हामी भरनी ही पडेगी। पर उसकी नौबत आई नही। खिडकीमे फेंके मेरे पेशावरी और अधढकी पतलूनने मुझे रातकी उस तस्वीरमे आने न दिया। सुबह जब आँख खोल, करवट बदल, सिरको कुछ उठाकर मैंने देखा तो डब्बेको आदमियो और उनके धुएँसे भरा पाया। आँखे शरमाकर अपने भीतर समागईं। सारी आँखे मेरी ही ओर लगी थीं, कुछ डरी, सहमी आँखे। और मुझ जन-सेवकके सिवा बाक़ी सारे बर्थ सिमटे आदमियोसे भरे थे। चुपचाप मैं घुटने ऊपर उठा, उकड़ू-सा बैठ अपने नये जलते सिगारका धुआँ खिडकीसे बाहर फेंकने लगा।

× × × ×

धीरे-धीरे दोपहर होचली। सामनेके फैले मैदानमे क्षितिजके अर्धवृत्त के नीचे अङ्गार दहकने लगे। खिडकीसे बाहर देखना कठिन होगया। खिड़की बन्द करना असम्भव था। उमससे जो तन पसीजता खुली खिडकी से पैठती लू भी क्षणभर ठण्डी बयार-सी लगती और मन कुछ ठिकाने होता।

अगले स्टेशनपर एक धक्का आया और डब्बा उसे निगल गया। दूसरेपर फिर, और तीसरेपर डब्बेकी शकल भीड़ने खुद मिटादी। आगे तो प्रत्येक स्टेशनपर आदमियोंकी रेल-पेल होनेलगी। दरवाजेतक भरे खिड़कियो पर बैठे आदमियोसे बाहरवाले जगह पानेकेलिए अनुनय करते, गिड़गिड़ाते। कहते—'देखिए, हम खडे-खड़े चले जायेगे।' पर भीतरवालोकी गोटी लाल थी, वे पहले आये थे। सुनी अनसुनी करदेते। फिर एक नया रद्दा, आद-मियोंका, डब्बेके बाहरी पायदानपर खिड़कियोंके सहारे चढजाता। काशीमे नहान था, चन्द्रग्रहणका!

रेलवेके कर्मचारियोंपर क्रोध आता—क्यों टिकट काटते हैं वे जब उनके पास काफी गाड़ियाँ नही। फिर अपनी ओर नजर जाती। सोचता-क्यो नही मदद करता मैं उन गरीब मुसाफिरोंकी जो पायदानपर लटकेहुए हैं। अभीतक मेरे बर्थपर केवल एक सिरा बोझिल था जिसपर एक ईसाई महिलाको मैंने बिठालिया था। बाकी जमीन बर्थकी मेरी थी। मुझे किसीको बिठाना नामंजूर न था, पर अगर कोई इधर न फटके तो मैं क्या करूँ? और चूँकि कोई इधर आता न था मैं बर्थके सहारे डब्बेको दीवारसे चिपका पडा था, अपनी पेशावरी चप्पलों और सफेद पतलूनकी रक्षामे।

काशीके नहानमे जानेवाले असख्य थे। उनमे बिला टिकट चलने वालोंकी सख्या भी कुछ कम न थी। टिकट-एक्जामिनर किसी कदर डब्बेमे दाखिल होकर काफी भीड़, मॅगतो और गरीबोकी, पाखाने, कोनो और बर्थोंके-नीचेसे बुहारते जाते; पर जितने तेजीसे वे उसे बाहर करते उतनी ही जल्दी वह फिर अन्दर दाखिल होजाती। और उसका आना टिकट-एक्जा-मिनर साहबको कुछ खलता भी नही दीखता था। उनकी जेबे कानूनी गैर-कानूनी पैसोसे भरचुकी थीं, उनके होठ पानकी सुर्खीसे सुर्ख होचुके थे। मैंने कईबार सोचा कि उनसे पूछूँ— 'क्यो बेगुनाहोंको पीसते और उनसे पैसे ऐंठते हो?' पर तभी मेरा खाली बर्थ जैसे उठकर मेरी आँखोंमे आ धँसा। मैंने सोचा—हम दोनोंमे अन्तर केवल आँख बचा लेनेका है।

और मैं जनसेवक हूँ! कम्यूनिस्त, समाजवादी! रूसी-साहित्य पढ़ता-पढाता हूँ, लगनके साथ। तुर्गनेव और पुश्किनकी नीवपर गोर्की और श्लोकॉव के पाए खडेकर मैं उनपर अपने साहित्यका भूला बाँधता हूँ। पर अभीतक मुझे न तो लेनिनके जन-प्रेमकी गन्ध लगी, न स्तालिनके कठिन परिश्रम और अध्यवसायकी। लोगोंमे कम्यूनिस्त बुद्धिजीवी कहलानेकी लालसा है और उसका एक खासा रङ्ग पढी-लिखी जनतापर चढ ही गया है। अपने भीतरकी सचाई अपनेसे नही छिपती, फिरभी आदमी उससे अपनी आँखें फेरलेता है। और मैं इन्सानोंके उस गरोहसे न तो अलग हूँ न भिन्न जो यत्न करता है अपने - केवल अपने-लिए और इस तथ्यका भार रखता है उस भारी-भरकम वसूलपर जिसे परार्थ कहते हैं, जनसेवा!

मेरे चिन्तनमे विघ्न पड़ा। डब्बेमे एक ओर कुछ हलचल-सी मची थी। एक गरोह बिला-टिकटवाले मुसाफिरोका उतार दियागया था। उसमेका एक जन खिड़कीके रास्ते फिर डब्बेमे घुसनेका प्रयत्न कररहा था और भीतरका जन-संभार अपने क्षणिक अवकाशको बोझिल नहीं करना चाहता था। टिकट-एकजामिनरकी गालियोंके साथ अपने कठोर अनुशासनसे वह उसे रोकरहा था। उपेक्षा-भरी नजर मैंने उधरसे घुमाली। पास का दृश्य कुछ अधिक मनोरजनका सामान इकट्ठा कररहा था—मेरे सामने के भरे बर्थपर, डब्बेकी दीवारके समीप, मेरी नजरके ठीक नीचे।

"टिकट!"

"ऐं-!" पेट पीठसे सटा था। पाँवमे जूते न थे। कमरमे मैली धोती बँधी थी, सरपर पगड़ी।

"टिकट दिखाओ, टिकट।"

"जी टिकट!"

"हाँ, हाँ, सुना नहीं क्या? और क्या यहाँ तुमसे रिश्ता जोडने आया हूँ?"

"नही हुजूर, कैसो बात करते हैं आप ? कहाँ आप बन्दानेवाज, कहाँ मैं आपका गुलाम !"

"अच्छा, अच्छा, लफ्फाजी मत कर। टिकट दिखा।"

"जी, टिकटकी बात यह है, सरकार..."

"क्या ? टिकट नहीं है ?"

"हजूर .."

"हजूरके बच्चे ! टिकट कहाँ है तेरा ? चल निकल यहाँसे। हमारे पास इतना वक्त नही है कि इतनी देरतक एक-एक शख्ससे उलझे।" टिकट-एक्जामिनरने उसकी पगड़ी जोरसे झकझोरदी।

फेटेका एक खूँट डब्बेकी दिवारसे जा टकराया। पैसोंके बजनेकी-सी आवाज हुई और साहब उसपर टूटे। पर पैसे ज्यादा न थे, फक़त कुछ आने! उनकी खुशी दबगई। भवोंपर बल पड़गए।

"कहाँ जायगा तू ?" आँखे तरेरतेहुए साहबने पूछा। उनकी टिकट काटनेवाली मशीन गरीबके खुले सिरसे आलगी। चोटसे बिलबिला कर वह रहगया। सिगारकी दूसरी कश खीच मैं दूसरी ओर देखने लगा।

"मैं बड़ा गरीब हूँ, सरकार।" गिड़गिड़ाता हुआ मुसाफिर बोला।

"तुझे टिकट देना होगा, तेरे पास पैसे हैं। पर बता, तू जायगा कहाँ ?"

"मैं ? मैं हजूर बहुत दूर जाऊँगा।"

"अबे बोलता क्यों नही, कहाँ जायगा ? तेरे साथ मगजपची करने के लिए मेरे पास वक्त नही धरा है।"

"मैं मक्के जाऊँगा, खुदाबन्द, हजको।"

"मक्का क्या तेरे बापका घर है, और गाड़ी क्या तेरे घरकी है ?"

"हजूर मक्का दरअस्ल इन्सानके बापका घर है, और नबीका। और गाड़ी गरीब-परवर सरकारकी है।"

"फिर तूने लफ्फाजी शुरूकी? अच्छा उठा अपनी चीजें, निकल।"

"हजूर माँ-बाप हैं, माफ करें! खुदा आपपर मेहरबान होगा।" अपनी पगडी और छोटी गठरियाँ इकट्ठा करताहुआ मुसाफिर बोला।

"जरूर तेरे पास पैसे हैं, दिखा अपने कपड़े।"

"हजको जानेवाला मुसाफिर झूठ नहीं बोलता, सरकार। मेरे पास कुल ढाई रुपये हैं, मैं खुश्कीके रास्ते हम-मज़हब बिरादरोंके बीच माँगता-खाता निकल जाऊँगा।"

"दिखा, दिखा पहले। खोल वह बड़ीवाली गठरी।" झल्लाए टिकट-चेकरने कड़ककर कहा। उसकी उम्मीदें लौट आई थी।

सारा डब्बा यह दिलचस्प वाकया देखरहा था। एक-एक आँख उचक-उचक मुसाफिरकी गठरीकी ओर देखरही थी। मैंने एक कश और ली। टिकट-चेकर गठरीकी ओर झुका। मुसाफिरने गठरी खोलदी। उसमें सत्तू भरा था।

"यह दूसरी दिखा।" चेकरको उतावली थी।

"लीजिए"—कहकर दूसरी गठरी भी मुसाफिरने खोलदी। एक सफ़ेद नया कपड़ा उसमें बँधा था। चेकर साहब उसकी ओर लपके।

पूछा—"यह क्या है?"

उत्तर मिला—"यह मेरा कफन है।"

तूफ़ानके बाद

वातावरण गूँजरहा था, वायु-मण्डलमे आवाज भरी थी। लाखो करोडों बिजलियोंके टूटनेका शब्द होरहा था। रात अँधेरी थी, भयानक, पर दिनका-सा उजाला होरहा था। आकाश मेघाच्छन्न था। काले बादल काली चादर-सी तानेहुए थे। कुछ उस तूफानमे आँधीके कारण इधरसे उधर मँडरारहे थे। बिजलियाँ निरन्तर चमकरही थीं और उनकी रोशनीमे मेघोंका काला-कलेवर और गहरा दीखरहा था। बाहर कोई न था। पहाड़ी शहरके रास्ते सुनसान होगए थे। आदमी मकानोके भीतर बन्द पडे थे। जानवर अपनी-अपनी पनाहमे छिपगए थे। पक्षी घोंसलोमे बसेरा लेरहे थे। चर मौन था, अचर डॉवाडोल। मैं अपनी कन्दरामे जाघुसा।

मेरी कन्दरा नीचे थी, ऊपरी तलसे कोई बीसहजार फीट नीचे। प्रकृति ने उसे विशेष चतुराईसे बनाया था। कन्दराके भीतर कन्दरा थी उसमे, जैसे कमरेके अन्दर कमरा होता है। बाहरी मडपमे ढालके नीचे एक प्राकृतिक दरवाजा था जिसके आगे चट्टानका एक प्राकृतिक खण्ड था। इससे गुफाका द्वार स्वाभाविक ही बन्द होगया था। उसके पीछे मैंने एक कृत्रिम दीवार खड़ीकर अपने उस पहाड़ी घरको वन्य जन्तुओंसे सुरक्षित करलिया था। बाहरी दीवारको छूताहुआ एक गर्म जलका सोता बहता था, जो मेरे स्नानके काम आता था; उसीका जल मैं पीता भी था। उसके बाहरी ओर बहावके ऊपर कन्दराके पीछे हिंस्र-जन्तु आकर उस सोतेका जल पीते थे। मैं उन्हे रोज देखता तो न था, पर शामके झुटपुटेमे उनकी आवाज जरूर सुनता था।

अन्दरवाली कन्दरा दो ओरसे खुली थी यद्यपि मैंने प्रकृतिकी मदद और अपनी अक्लसे उसे बन्द करदिया था। दिनके समय मैं उन दोनों प्राकृतिक दरवाजोके ऊपरी हिस्सोंको खोलकर उस अपने अन्दरके कन्दरे

था कमरेको सूरजकी धूपसे गरम और प्रकाशित रखता और रातमें चकमककी रोशनीसे उसमें उजाला रखता। पत्थरों ही का मैंने एक ऊँचा पलँग बना रक्खा था, जिसपर थक जानेपर मैं पैर फैलालेता था। रातके समय जाडेके दिनो मे वह मेरा कमरा विशेष गरम जान पड़ता, और गर्मियोंमे तो मै यह प्रदेश छोड कैलाशकी ओर चलाजाता, जहाँके लोग-लाहुली और गलचा बोलते थे— मानसरोवरके आसपासके लोग जिनमे से कई मिलकर एक बीबी रखते थे पर उससे झगडते कभी न थे। मैंने भी एक जमानेमें किरातोका जीवन अख्तियार करलिया था: पहाड़ोमे रहता था, जङ्गलोमे विहरता था।

मै पहले कहचुका हूँ—मै अपनी कन्दरामे जाघुसा। पहाड़ी दीवार काफी मोटी थी—जितनी हिमालयकी होती है, या होसकती है। पर बाहरका तूफान भी कुछ हल्का न था—पहाड़ी दीवारको भेदकर उसकी आवाज कन्दरे मे गूँजनेलगी। तूफान पहले भी आए थे। उनकी आवाज मेरे आवासकी दीवारोंसे पहले भी टकराई थी। उनकी गरजसें कन्दरा पहलेभी गूँजी थी। पर अबकी बात और थी, उनसे भिन्न और भयानक। मेरी गर्दभरी सहमी आँखोंने बाहरकी ओर एकबार घूमकर, उचककर, देखा; फिर वे अँधेरेमे लौटी। भीतरका अँधियाला इतना घना था कि सुई उसे छेद सकती थी। पर बाहरकी बिजली रह-रहकर उसे भी कुछ चमकादेती थी। चमकते उजालेकी छायामें कन्दरेका कोना-कोना दीख जाता।

फिरभी मैंने चकमकसे आग जलाई। बाहरकी आवाज बढती जारही थी। बवडर जैसे जगलको ऐंठरहा था, तूफानका देव हू-हू कर रहा था। जानपडा जैसे जङ्गलमें आग लगगई। पेड़ टूटने लगे—तड तड़, चट्टाने जैसे उड़-उड़कर टकराने लगीं। दावानल दहका। जङ्गलका कोना-कोना जैसे जल उठा। बाहर झाँकनेकी हिम्मत न पडी। पीछे देखनेसे भय होता था। विशाल शिलापट्टको अपने बनाए यन्त्रसे मैंने दरवाजेमे भेड़दिया, और इस तूफानसे अमङ्गलकी आशङ्का करता द्वारसे दूर

जाबैठा। पर दीवारें हिल-सी उठीं। दीवारें हिमालयकी, और इतनी मोटी जितनी पहाड़की होसकती हैं, पर वे जानपडी मानों हिलउठीं! दिल दहल उठा। तूफ़ान जोर पर था, बढती पर।

दावानल दहकरहा था। पेडोंके शिखर, मैं अपनी कन्दराके झरोखे से देखता, दूरकी ढालपर रुईकी फुनगीसे एकबार फफकते फिर ज्वालाओं में समा जाते। और उन ज्वालाओंकी गहराई कौन नाप सकता था? वह वनका विस्तार जिसका ओर-छोर न था उस आगकी अनन्त गहराई बना। बिजलियोंका आलोक उस अग्निके प्रकाशमें खोगया। उसपर दृष्टि नही ठहरती थी। जमीन काँपती थी, आस्मान गूँजता था। आगकी भयङ्करता अगर किसी को देखनी हो तो वह जङ्गलकी आग देखे जिसके बुझनेका गुमानभी इन्सान नहीं करसकता। जङ्गलकी आग रोज देखता था, रोज किसी-न-किसी हिस्सेमे आग लगती। देखता, नजर फिरा लेता। नजारा अजब नही था।

पर आजकी भयावनी रातमे आगका नर्तन कुछ अजब था। और डहती आगके उस तूफानको दैत्य उन्चासों पवनसे फूँक-फूँक लहका रहा था। पेडोंके टूटनेका स्वर वायु-मण्डलको भररहा था, पर उसकी आवाज आदमियों और जानवरोंकी कातर आवाजमे डूब चली। दावानलसे जलते भागते जानवर चीख-चिल्लाउठे थे। उनकी आवाजमे मौत दहाड़ती थी। कान उनके चीत्कारसे बहरे होचले। और वह आवाज एक अजीब उलझी हुई आवाज थी, आदमी-बनमानुसकी, शेर-चीतेकी, हाथी और हिरनकी— रोती-चीखती, सदमा-भरी आवाज। मौत देखी थी इन्सान और हैवानकी बँधी जिन्दगीमे लुकी-छिपी, पहले और कई बार। पर वह थी लुकी-छिपी। अब उसे सदेह चमकते लम्बे-लम्बे डग भरते देखा, लाल लपटोंके सायेमे।

जलते जङ्गलकी आग जमीनकी सतहपर पहुँची। उसकी गहराई में रह-रहकर वह झाँकने लगी। सतह गरम होउठी, गहराई लहक चली। धरती डोली और चट्टानोंका टूटना रह-रहकर सुन पड़नेलगा। इन्सान और

हैवानकी आवाज खोगई पत्थरकी उस टूटती काँपती आवाजमें। पहाड़ोंकी चोटियाँ सिहर उठीं। उनके मोड हट चले, दरारे निकल आई। आगकी लपटे अभी आस्मान चूमरही थी। रह-रहकर जोर-जोर से कुछ सन्-सन्-सा सुन पडने लगा। सन-सन्-सा सुनपडता और उसके तुरत बाद लाखों-करोड़ो तोपोंके एकसाथ छूटनेका-सा शब्द होता। कान बहरे होनेलगे। जान पडा जैसे पहाड़से पहाड टकरारहे हो, चट्टाने चट्टानोंपर टूटरही हो।

उठा और कुछ उचककर झरोखेसे देखा। उडती धूलिकाकी एक धार-सी मुँहपर टूटी। आँखें भरकर अन्धी-सी होगई। लौट पडा, लौटा नहीं, पागल होउठा। लड़खड़ाताहुआ बैठगया। क्षणभर जो दृश्य उस प्रलयाग्निके उजालेमें मैंने देखा वह नहीं भूलसकता और उसकी स्मृतिसे इस वक्त भी दिल हिल जाता है—पहाड़से पहाड टकरारहे थे, चट्टाने चट्टानो पर टूटरही थी। पहाड निरन्तर चिटखरहे थे और उनके चिटखे चूर विशाल चट्टानोंके रूपमें इधरसे उधर उडरहे थे, परस्पर टकरा-टकरा टूटरहे थे। मालूम होता था कि दो दैत्य चट्टानोंको अस्त्र बनाकर लडरहे हैं। चट्टानोंके निरन्तर चलनेसे हवामें सन्-सन् होरही थी। मेरी दीवारोंसे भी वे रह-रहकर टकराने लगी। आँखोंको हाथसे मीच, सिरको घुटनोंके बीच डाल, मैं लुढकपडा। पर संज्ञा जागती रही।

अबतक बादलोंकी छाया काफी स्याह होगई थी। आखिर धार टूटी। और खूब टूटी। बादलोंका ओर-छोर न था। चारों ओर मोटी धार गिरने लगी। हवा पहले-सीही तेज थी, पर भारी बादल पहाड़से अचल बने रहे। नदियाँ बहचलीं। आग पानी भरनेलगी। जहाँ-जहाँ अभी कुछ घण्टों पहले लपटे ललकती थीं वहाँ-वहाँ अब पानीकी मौजे चढने उतरने लगीं। अब जो झाँका तो देखा पेड़ोका जङ्गल समुन्दर बनगया है, पर उसकी सतह कोयलोंसे काली होरही है। इसी समय कन्दराके सोतेकी ओर जो नजर गई तो देखा उसमें अथाह जल भरा है और वह छन-छन गहरा होता जारहा है।

और देखा मेरे पैरोंके नीचे कन्दरेकी जमीनपर भी पानी बढता जारहा है। आगेकी कल्पनाकर पिछली दीवारके छोरसे भागा।

मैं बाहर भागा क्योंकि न भागनेसे केवल अनिष्ट ही न होता संहार होता। मैं भागा वेगपूर्वक, बाहर—उस जली जमीनके ऊपर बहते समुन्दरकी सतह पर। मगर बाहरका समुन्दर अब सूख चला था, नीचेके सोतोमे उतरगया था। ऊपर, पूरबी आसमान पर, जमीनको चूमती लाली अब गहरी गोलाई धारण कररही थी। जङ्गल मैदान होगया था। सुबहकी हवा हल्की और ताजी थी। बादल बिखरगए थे। कुछ सफेद कुछ धुआँसे-धुँधले बादल दूर उडे जा रहे थे, कुछ डरी तेजीसे। और चारो ओर सन्नाटा था, कबरिस्तानकी तरह।

पिछले अनुभवसे अभीतक मेरी सजा सहमीहुई थी। अभीतक मुझे यह पूरा-पूरा न समझ पड़ा कि डरका सच्चा-झूठा कारण अब नही रहा! अबभी मैं भागा जारहा था। धीरे-धीरे उजडी परिस्थितिका रहस्य सूरजके वेगसे बढतेहुए तेजने मेरे सामने खोलकर रखदिया। जिस दम मुझे प्रकृतिकी इस उजड़ी यथार्थताका बोध हुआ, मुझे पहली बात जो खली वह थी सर्वत्रकी निठुर नीरवता। सूरजका दहकता गोला चाँदनीके अवसानके बाद धीरे-धीरे उठते मैंने स्वयं देखा था पर उसकेसाथ मैंने पक्षियोंका कलरव न सुना। मैं अपनी कन्दरा सदा प्रातः छोड़ा करता था और पहली बात जो मेरा ध्यान अपनी ओर आकर्षित करती थी वह थी पक्षियोंका मधुर गायन। उनकी चुप्पी निश्चयही खलगई। मुझे सहसा जान पडा आजका प्रभात रोजका न था।

निश्चय ही आजका प्रभात रोजका न था। प्रातः का समीर भीगी जमीनको सुखारहा था। मैं अबभी चला जारहा था। सहसा मुझे जान पड़ा मैं नित्यकी पगडण्डीपर नही चलरहा हूँ। वास्तवमे वह पिछली रातके अग्नि-ताण्डवमे खोगई थी। मैंने एकबार सहमी नजरसे अपने चारोंओर देखा। तब मुझे ऐसा जानपड़ा कि मैं अनजाने क्षितिजकी ओर बढता चला जारहा हूँ, और मुझे दिशा-ज्ञान नही है। दिशा-ज्ञानसे मेरा तात्पर्य केवल पूरब-

पच्छिमसे ही नहीं है, पूरब-पच्छिमका बोध तो मुझे सामनेका बाल-सूर्य करा ही रहा था, पर रास्तेकी पहचान मुझे अब न थी। राहके किनारे खडे पेड-पौधे, उनके बीच और बगलसे होकर गुजरनेवाले मोड़-तोड़ ही जङ्गलमे रास्तेका बोध कराते हैं। यहाँ उनकी बुनियाद जङ्गलका ही नाम-निशान न था। सूखी पहाड़ियाँ घूररही थीं। एक अजीब उलझन दिलमें पैदा होगई। निसर्गकी चुप्पी मुझे खलने लगी। सामने खुले मैदानमें मुझे ऐसा जान पड़ा, सारी राहे खुली पडी हैं पर मैं उनपर चल नहीं सकता।

एक क्रूरता भरे कोलाहलकी होती है दूसरी रिक्त नीरवताकी—यह मुझे आज जानपड़ा। सामनेकी नङ्गी पहाड़ियाँ, उनकी शूल-सी खडी चोटियाँ जैसे मुझे घूरती थी। सामनेके ऊबड़ खाबड़ मैदानके पीछे खडी वे पहाड़ियाँ और उनके पीछे आसमान चूमते पार्वतीय शिखरोंकी अनवरत हिम-मण्डित शृङ्खला जिसपर बालारुण इस समय अपनी सोनेकी किरणे बरसारहा था!! मुझे कुछ डर-सा लगा। एकाकीपन काटने लगा। जान पडा आदमी अकेला नही बसता। मदमें और कष्टके कारणभी एक सीमातक उसके प्यारभरे सहचर हैं। मै आनन्द अथवा भय-जनन करनेवाले एक स्वरकेलिए ललचा गया। तब अगर शेरका समीप दहाडना भी सुनपडता तो मैं थिरक उठता, उल्लूकी आवाज मुझे कोयलकी टेरसे अधिक आकर्षक जान पडती और रीछका साहचर्य मुझे माँगे वरदान-सा लगता।

मैं कुछ डरनेलगा था। और आगे जितनाही उस प्रकृतिके खुले आँगनमें मैं अपनी दृष्टि फैलाता मेरा भयभी उतनाही गहरा होता जाता। प्रकृति मानो मेरी ओर चारो ओरसे निगाह पसार देखती—मैं क्या करता हूँ। और मैं करता क्या? एक अजीब तरहका डर मेरे अङ्गोमें भीतर-ही-भीतर घर कररहा था। मेरे पाँव भारी होचले थे। आगे उठना उनका कठिन हो रहा था। मैंने साफ जाना, भीतरही भीतर, बिना बोले बिना सुने, कि मैं डर गया हूँ और मैं आगे नहीं बढ सकता उन घूरती पहाड़ियोंसे होकर। कुछ

क्षण मैं सामने खुली खाली नजरोंसे देखता रहा, फिर मेरे पाँव अपने आप अचल होरहे। किसी अनजाने भयसे रोंगटे खडे होगए थे। मैं लौटपड़ा।

लौट तो पड़ा, पर जाता कहाँ? जिस तरह सामनेका विस्तार डरावना साबित हुआ था, उसी तरह पीछेका प्रसारभी खाएं जाता था। और यदि पीछे फैली मेरी कन्दरा की लम्बी पहचानी छत मेरे सामने इससमय न होती तो मैं वही-का-वहीं बैठजाता, तड़पकर दम तोड़देता। मैं घूमचुका था। अब बढा। पर जिस डरके कारण मैं पीछे फिरा था उस अनजाने डरने मेरा पीछा अभी न छोड़ा था। जान पड़ता—पीछे और बग़लसे कोई हाथ बढ़ाए पीछा कररहा है। मैंने उस सहमी हालतमें ही अपनी चाल कुछ तेज करदी। वास्तवमें अप्रयास, अपने-आप वह तेज होगई। पर वे अनजाने हाथ जैसे पीछे, दाएँ-बाएँ मुझे छूतेही-से रहे। उनकी ठोस उपस्थितिका मुझे इस कदर आभास होनेलगा कि मैं रह-रहकर अपने दाएँ-बाएँ देखलेता। कब मेरी चाल और अधिक तेज होगई यह मैं न जानसका पर जब मेरी नजर मेरे पैरोंपर पड़ी, मैंने देखा—मैं दौड़रहा था।

मैं सचमुच दौड़रहा था, फिर-फिर पीछे देखता। तेज, और तेज, मैं भागा—उस बियाबाँमें, प्रकृतिकी पहुँचके बाहर!

मेरी कन्दराके पासही मोड़ था जहाँसे राह नीचे उतरती थी, लंबी ढालकी सपाट राह। वह नीचेकी बस्तीको जाती थी। कुछ मिनटोंकी दौड़ थी वह शायद, पर वक्तकी दौरान उस वक्त मेरे अन्दाजके बाहर थी, रुकना और सोचना मेरे बूतेसे परे था। जब कुछ पाँव थके-से, जाना कि बस्तीके भीतर खड़ा हूँ। पीछे फिरकर देखा तो आसमानको जमीन सूँघते पाया।

रातकी आग बस्तीतक न पहुँची थी और पानी यहाँ आकर बह चुका था। पेड़-पौधे पहलेसे खड़े थे, हरे-पीले पत्तोंके साथ। पर थे वे चुप। यहाँभी जानपड़ा ऊपरकी नीरवता कुछ घर करचुकी है। देखा—जहाँ अबतक बच्चा-बच्चा घरोंसे बाहर निकल जाता था, भेड़ोंकी आवाजसे जहाँ

कानके पर्दे फटने लगते थे, वहाँ एकभी स्वर नहीं सुनपड़ता। एक घरमे घुसा, वह सूना था। बाहर निकला, प्रकृतिकी चुप्पी वहाँ तन धारे खड़ी थी। दूसरे घरमे घुसा, उसेभी सॉय-सॉय करते पाया। तीसरेमे घुसनेकी हिम्मत न बच रही। अन्दरकी दीवारे घुसतेही जैसे कानाफूसी करने लगती। दिल बैठनेलगा।

क्या हुए यहाँके आदमी, मवेशी, परिन्दे? जैसे कोई किसीका कतरा खून निकाले बगैर दम घोटकर उसकी जान निकालले। मृत्युका कोई चिह्न नहीं था, पर उसकी सॉय-सॉय मानो सुनने लगा। क्या दरअस्ल यह मृत्युकी चोरी है? दिल धड़करहा था इसकदर कि उसकी ठक-ठक आवाज सुन पडती थी—वह एक आवाज जो और आवाजोंकी गैरहाजिरीमे आसमानका भररही थी। मैं घबरागया। गडगया। आगे बढनेसे मेरे पैरोंने जवाब देदिया।

रातका शोर अभीहाल तक कानोमे गूँजरहा था, मगर इस सूनेपनने उसेभी भरदिया। इसकी आवाज उससे कहीं ज़्यादा ताक़तवर थी। मेरे बाल-बाल को वह छू गई, रोम - रोम मे आबसी। कहीं अधिक भयानक थी यह दिनकी नीरवता। चिड़ियाका एक पूत कहीं न था, परिन्दा कहीपर न मारता था। सारा निसर्ग सूना, सारी बस्ती सूनी, घर-घर खाली।

दिलकी धडकन जोर पकडगई थी। आँखोंकी जोत धुँधली हो चली थी। खुली चोटीकी दुनियाँ ऊपर छोड आया था, नीचेकी भरी दुनियाँ सहसा खाली हो मुँह-बाए खड़ी थी। एकबार ऐसा जान पड़ा—घबराहटमे दम घुटता जारहा है। जैसे कोई खींचे लिए जारहा है। चेतना खोचली।

जब बेहरेने चाय देनेकेलिए जगाया, सपनेका आलम मुझपर छाया हुआ था। पर जहाँ मैं तम्बू डाले पड़ा था वहासे गिलगित नदीकी आवाज साफ सुनपड़ती थी। उसके एक ओर आमू और सिर दरियाओंका पामीरी पजशिर फैला दीखता था, दूसरी ओर बदख्शाँकी घाटी दूर लहलहाती दीख पड़ती थी। पर दिलपर जो मैंने हाथ रखा तो उसे अबभी धड़कते पाया।

पेंच

प्रद्युम्न मिश्र जिला फरुखाबादमें सरायमीरके पास एक गाँवके सम्पन्न जमीदार थे। उनका घर धन-धान्यसे भरा था। किसी बातकी उन्हे चिन्ता न थी। यदि चिन्ता थी तो केवल इसकी कि उनकी सम्पत्तिका कोई उत्तराधिकारी न था। स्वय उनको उनके नानाके यहॉसे जो एक बड़ी जमीदारी मिली थी वह जिला उन्नावमे एक छोटी-मोटी रियासत ही थी और मिश्रजीके नाना पण्डित श्रीकान्त पाण्डेय कानपुरके आसपासके कान्य-कुब्जोकी नाक थे। इसप्रकार प्रद्युम्न मिश्रको धन और यश दोनोंकी प्राप्ति हुई थी पर अब उन्हे भोगनेवाला कोई न था। उनकी बुड्ढी दादी अभीतक जिन्दा थी और उनका कहना था कि "निर्वंशीका धन फलता नही। उसका अन्न समान असर पैदा करता है। उन्नाववालोंका ताल्लुका फला नही। उसी कारण प्रद्युम्नको सन्तान नही हुई।"

वास्तवमे कुछ ऐसा नही था कि प्रद्युम्न मिश्रकी पत्नी बन्ध्या हो। वैसे तो कईबार गर्भके लक्षण दीखपडे, कईबार प्रसव-पीड़ा हुई, पर न जाने किस कारण हरबार अनिष्ट होतागया और मिश्रानीजीकी कोख सूनीही रही। कितनीही बार देवताओं-देवियोंकी मनौती हुई, कितनीही ताबीजे साध से मिश्रानीजीकी कटि और गलेसे झूली, मिश्रजीकी भुजामे बॅधी, मगर कुछ विशेष फल न हुआ। एकके बाद एक अनिष्ट होता ही रहा। जब लक्षण व्यक्त होते घर-भर उत्कण्ठा और आशासे भरजाता, पर धीरे-धीरे पिछले अवसरोंको यादकर मिश्र और मिश्रानीजी मौन होरहते। जब अनिष्ट होजाता, उनका जी टूटजाता। अब उन्होंने आशा छोडदी और जब लक्षण दीखते भी, वे चुपचाप इसे भरसक छिपाते। पर इस जादूको कौन छिपाकर रखता। शीघ्र वह विषय पहले घरका फिर जवारकी बात होजाता।

इस बार जब वे ही लक्षण प्रगट हुए तब उनके एक डॉक्टर मित्र मिश्रजीके पास ठहरेहुए थे। जब उन्होंने मिश्रजीकी परेशानीका कारण सुना तो उन्होंने उन्हे मेडिकल कॉलेज लखनऊमे भरती करादेनेकी सलाह दी। पहले तो मिश्रजीने न माना और वे डरे भी कि उनके कुल-परिवारवाले उनका ऐसा आचरण स्वीकार न करेंगे। विशेषकर उनकी दादीने इस प्रस्तावका बड़ा विरोध किया। कहा—इससे तो कान्यकुब्जोंमें मिश्र-परिवार की नाकही कट जाएगी। स्वय मिश्रजीका ऐसा ख्याल था कि बच्चा जनते समय जच्चाके पास छात्र-डॉक्टर रहते हैं और उसी अवसरपर डॉक्टर उन्हे उस कार्यमें दक्ष करते हैं। पर मित्रके समझानेपर वे राजी होगए और उन्होंने अपनी पत्नीको लखनऊ मेडिकल कॉलेजके, क्वीन मेरिज् अस्पतालमे एक किरायेका कमरा लेकर दाखिल करादिया। फिरतो कुछ दिनोंमे मिश्रानीजीका जी वहाँ ऐसा लगा कि वे अपना कमरा छोड़ जेनरल-वार्डमे चली गई जहाँ अंग्रेज, ईसाई, हिन्दू, मुसलमान सभी औरतें थी। यहाँ उनका जी अच्छी तरह लगनेलगा। भरती भी वह समयसे बहुत पहले होगई थीं, इससे तनहाईमे वक्त कटना कठिन था, अब गप-शपमें दिन जाते देर न लगती।

× × ×

"डॉली, तुम गलत कहती हो। माँका स्नेह बालकपर स्वाभाविक होता है। इसमे बनावटकी कोई बात नही।"

नही होता जितना लोग समझते हैं। अक्सर आदमी प्यार और नफरत भी देखा-देखी और परिस्थितियों और आदतोंसे मजबूर होकर करता है। नोराको इसे माननेमें आपत्ति थी।

"गायको नही देखा है, डॉली, जो अपने छोटे बछड़ेके पास किसी को फटकने नही देती और माँ बच्चेकेलिए अपनी जानतक कुर्बान करदेती है?" वह बोली।

"जी, सही। मगर आपको मालूम होना चाहिए कि उस गायका बछड़ा या औरतका बच्चा सोसायटीमे जन्म लेता है जहाँ वह हरएक माँको ऐसाही करते देखती है।" डॉली ने उत्तर दिया।

"पर जब हरएक माँ को बच्चेको प्यार करते वह देखती है तब यह देखना तो बहुत पुराना हुआ, यानी स्वाभाविक? इससे तो हमारीही बात सिद्ध होती है।" नोराको डॉलीकी दलील कमजोर पड़ती जानपड़ी।

"सुनो, नोरा, और समझो—मेरे कहनेका मतलब यह हरगिज नही है कि खूनका असर नही होता। हेरेडिटीका असर सन्तान पर सब स्वीकार करते हैं, मैं भी करती हूँ। पर मेरा कहना केवल इतना है कि मातृत्वका अधिकाश आदतो और परिस्थितियांसे बना है। बच्चेपर स्नेह माँ का कुछ तो अपने खूनके असरसे होता है पर अधिक उसके साथ रहनेसे, शिशुकी लाचारी हालतसे और उसके बडे होकर बुढापेमे माँकी परवरिश करनेकी उम्मीदसे। हिन्दुओंमे अधिकतर पिता इस कारण भी बेटेको प्यार करता है कि वह मरनेपर उसको बिहिश्त पहुँचाएगा, उसके सात पुश्तको तारेगा। माँका स्वाभाविक प्यार कुछ खास जोर नही रखता।" डॉलीने शब्दोमे जोर भरकर कहा।

"यानी—?" फ्लोरेंस नोराके पीछेसे उचकतीहुई पूछउठी।

"यानी—अगर माँको यह न मालूम हो कि वह बालक जिसे दुनियाँ उसका जानती है और जिसके प्रति स्वयं उसका भी यही विश्वास है, वास्तव

मे उसका नही है, तबभी वह उसको ही प्यार किये जाएगी। और यदि उसका प्रेम कम हो भी गया तो वह इस कारण होगा कि दुनियाँ यह बात स्वाभाविक मानती है कि अपने ही बच्चेपर माँका प्यार होता है और यह बालक उसका नहीं है। यानी—यह कि कहीं धोकेसे अगर मेटर्निटी-वार्डमे बच्चे बदल जॉय तो माताएँ गलत बच्चोंको उसी मोहसे प्यार किए जाएँगी जिससे वे तब करती जब बच्चे उनके अपने होते।" डॉली ने उत्तर दिया।

"क्या, सच ?" फ्लोरेंसने ऑखे फाड़कर पूछा। सभी डॉलीके इस उदाहरणसे चकित होगईं। पर फ्लोरेंसका कुतूहल असाधारण था।

"हॉ, दावेके साथ कहती हूँ।" डॉली जोरसे बोली। "पर कही सचमुच, खुदाके वास्ते, किसीका बच्चा न बदल देना, फ्लोरेंस।"

डॉलीके इस कथनसे बहसका रूप बदलगया। हॅसीके फव्वारे छूट पड़े। पर फ्लोरेन्सके मुखपर कुतूहल और चिन्ताकी रेखाएँ थी, हॅसीकी नही।

बिस्तरपर पड़ी देरतक फ्लोरेन्स करवटे बदलती रही। बहुत पहलेसे जब शुरू-शुरूमे उसने जच्चा-वार्डमे काम करना शुरू किया था, उसके मनमें एक चोर घुसा था, अब डॉलीके उदाहरणने उसमे और उलझन पैदा करदी। पर नींद आनेके पहले उसने अपने मनमे एक बात पक्की करली। उसका जी धडकने लगा और प्रातःकाल जब वह सोकर उठी तबतक उसका दिल धड़करहा था। पर सकल्पको दृढकर वह नर्सेज्-होमसे ड्यूटीकेलिए बाहर निकली।

× × ×

वार्डमें आज पॉच औरतोंके मॉ बननेका अन्दाज़ था। प्रद्युम्न मिश्रकी पत्नी प्रसव-पीडासे बेचैन थी, और वैसीही थी उसी कमरेकी एक दूसरी औरत, जातकी भगिन अस्पतालकेही भगीकी बीबी। उस कमरेमें ड्यूटी थी नर्स फ्लोरेंसकी।

बड़ी दक्ष थी अपने काममें नर्स फ्लोरेंस। डॉक्टर, सिस्टर, मेट्रन सभ उसके कामसे प्रसन्न थीं। स्टाफ नर्सके पदकेलिए सिफारिश भी की जाचुकी थी। पर साथही वह जरा विचारशील स्वभावकी थी। उसकी दोस्त-नर्सें उसको फिलॉसफर कहकर सम्बोधन करतीं। रहती भी वह अक्सर थी मौन, चिन्ताकुल-सी।

आज फ़्लोरेंस विशेष व्यस्त थी। आज इस वार्डकी नर्सोंमेंसे एक अनुपस्थित भी थी जिससे काम बढ़जानेके कारण फ्लोरेंसपर कुछ अधिक आपड़ा था। इसी कारण आज वह इधरसे उधर हवाकी तरह उड़ती फिरती थी। उसका कलप कियाहुआ कड़ा 'ऐप्रॅन' फर्र-फर्र कररहा था।

कुछ ऐसा संयोग हुआ कि पाँचों स्त्रियाँ कुछही मिनटोंके अन्तरपर माँ बनीं। खासकर प्रद्युम्न मिश्रकी पत्नी और मल्लू भंगीकी बीबीके तो एक ही वक्त लडका हुआ। दोनो बैठे थे। मिश्रजी भी अस्पताल आपहुँचे थे और मल्लू भगी भी। बेटेकी पैदायश सुनकर दोनों खुशीसे उछलपडे। मिश्रजीकी दादीने अपने आनन्दके आँसू पोछ लिए।

पर मिश्रानीजीका यह पहला बालक था। एकाध दिनसे वे बीमार भी थीं। आज जब उनके बच्चा पैदा हुआ, वे बेहोश थीं। प्रद्युम्न मिश्र उनकी बेहोशी सुनकर घबरा उठे। पुत्रका अपूर्व सुख इस खबरसे कुछ कमजोर पड़गया और वे पत्नीकी परिचर्यामें लगे। बच्चा फ़्लोरेंसके चार्जमें था।

वार्डके पाँच बच्चोंको लेकर फ्लोरेंस उन्हे नहलाने चली। अस्पतालकी दाइयोंकी मददसे उन्हे नहलाया और गर्म कम्बलोंमे लपेटदिया। फिर बारी-बारीसे उसने बच्चोंको उनकी माताओंके पास लौटादिया। प्रद्युम्न मिश्रका बच्चा उनकी पत्नीके अस्वस्थ होनेके कारण कुछ कालतक नर्स फ़्लोरेंसके चार्जमें रहा। फ्लोरेंस अपने सकल्पको रूप देचुकी थी।

लोगोंने कुछ आश्चर्य किया जब पति-पत्नीके नितान्त गोरे होतेहुए भी प्रद्युम्न मिश्रका बालक कृष्णकाय हुआ। परदादीने कहा, 'घीका लड्डू

टेढा भला' । बच्चेके माँ-बापने भी इसे विधिका विधान समझ गिर-ग्रॉर । र लिया। उन्होंने नहीं जाना कि इसमें विधिका विधान थोडा है मनुष्यका करतब ज़्यादा।

मल्लूके पाँव तो जमीनपर पड़ते ही न थे। भ गीके घरमे गोरा बच्चा कुछ कम कुतूहलका विषय न था। भंगिनका दिमाग़ तो सातवे आसमान पर था। उसके जात-भाई मल्लूको सुना-सुना कुछ कहते जिसे वह अनसुनी करदेता, परन्तु वही निर्जनमे अपनी भगिनिसे कहकर उसका उपहास करता।

× × × ×

अट्ठारह वर्ष बाद।

जुलाईका महीना था। लखनऊके कॉलेज-स्कूल लड़कोंसे भररहे थे। मेडिकल कॉलेजमे भी बड़ी चहल-पहल थी।

नर्स फ्लोरेंस अब सिस्टर थी। लगभग बारह बजे वार्डोंकी गश्त करती जब वह ड्यूटी-रूमकी ओर निकली तो उसने उस रूममे बैठे एक प्रौढको देखा। उसका चेहरा कुछ पहचाना-सा जानपड़ा। वह ड्यूटी-रूम में घुसगई। डॉक्टर बाजपेई ड्यूटीपर थे। कुछ लिखते भी जाते थे और प्रौढसे बात भी करते जाते थे।

सिस्टरको आई देख वे बोले—"क्या बात है, सिस्टर, कैसे भूल पड़ी? क्या क्वार्टर्स जारही हैं?"

"हाँ, डॉक्टर, गश्त आज जरा जल्दी खत्म होगई।" फ्लोरेंसकी हिम्मत नहीं हुई कि वह कुछ उस बैठे व्यक्तिकी निस्बत पूछे। पर उसने उसे पहचाना।

वह चुपचाप ड्यूटी-रूम से बाहर निकलगई।

पर फ्लोरेंसके हृदयमे एक अजीब दर्द शुरू होगया था। चोरकी नाई वह घबराई हुई थी। दूसरे दिन वह डॉक्टर बाजपेईको खोजकर उससे मिली। और इधर-उधरकी बातोंके बाद उसने उस प्रौढका परिचय पूछा।

उसने बताया कि वह उसका मेहमान है, उन्नाव और फरुखाबाद जिलेका एक रईस, जो अपने लड़केका नाम लिखाने लखनऊ आया है।

"लड़केका नाम लिखाने? लड़का क्या उसका अबोध है, अनाड़ी?" फ़्लोरेंसने पूछा।

जहाँ मेडिकल कॉलेजमें एक-से-एक चलते-पुरजे लड़के आते हैं वहाँ किसी ऐसे विद्यार्थीका आगमन जो अपना नाम लिखानेकेलिए अपने पिताको साथ लेकर आए, फ्लोरेंसकी समझमें न आया। समझ तो वह सब-कुछ गई थी पर जिसमें डॉक्टर बाजपेईको किसी प्रकारका सन्देह न हो, वह उससे कुतूहल दिखाती पूछतीगई।

"बात यह है," डॉक्टर बोले, "कि ये मेरे रिश्तेदार पण्डित प्रद्युम्न मिश्र हैं। बड़ी मुश्किलसे उनको एक लड़का क्वीन मेरिज्में हुआ था। इसीसे उसपर माँ-बाप दोनोंका असाधारण स्नेह है। पिता यहाँ कॉलेजमे नाम लिखाने आए है, माँ शहरमे ठहरीहुई हैं।"

फ्लोरेंस नाम सुनकर पूरा-पूरा समझगई। जाहिरा जोरसे हँसते हुए उसने पूछा—"भला इस खुशकिस्मत रईसजादेका नाम क्या है?"

"अनिरुद्ध मिश्र" कहता डॉक्टर हँसताहुआ वार्डकी ओर चलागया।

× × × ×

फ्लोरेंसकी दोनों सखियाँ लखनऊ हीमे थीं। नोरा उसके साथही स्टाफ-नर्स थी, डॉलीने डॉक्टर विलियम्ससे शादी करली थी।

आज फ़्लोरेंसने उन दोनोंको चायपर बुलाया था। जब चाय प्यालों में ढलचुकी फ़्लोरेंस कुछ गम्भीर होगई।

"नोरा, डॉली, आज मैंने तुम्हे एक बड़ी गम्भीर बात सुनानेकेलिये चायपर निमन्त्रित किया है।" वह बोली

"कहो, कहो!" नोराने कहा।

डॉलीने भी उत्सुकता-पूर्वक उसकी ओर देखा।

"आजसे करीब अट्ठारह साल पहलेका जमाना हुआ जब नर्सेज होममें तुम दोनों इस बातपर बहस कररही थी कि माताका प्यार स्वाभाविक होता है या कृत्रिम । याद है ?" फ्लोरेंसने पूछा।

नोरा कुछ गुनने लगी। फिर बोली—"यह बहस तो हम दोनोंमें अक्सरही चला करती है, तुम जानती हो, फ्लॉरेंस।"

"सही, पर उसकी याद करो—एक बात है।"

"याद है, बोलो।" गम्भीर प्रकृति डॉलीने कुछ गुनतेहुए कहा।

"तुमने कहा था कि यदि दो माताओंके बच्चे बदलदिए जायँ तो दोनों बदले बच्चोंको वैसेही प्यार करेंगी जैसे असलको।" फ्लोरेंसने डॉलीसे कहा।

"फिर ?" नोराने पूछा।

"फिर मैंने वह काम किया जिसका तुम्हे गुमान भी नहीं होसकता।" फ्लोरेंस बोली।

दोनों काँपगईं।

"तुम्हारी उस दिनकी बात मुझे आजभी याद आगई, फ्लोरेंस। क्या तुमने सचमुचही कुछ करदिया था ?" डॉलीने पूछा।

"आज मेरे पास तुम्हारी बातकी सच्चाईका प्रमाण है, डॉली। मैंने उसका एक्सपेरिमेंट कर उसका नतीजा अपनी आँखोंसे देखा है।"

नोरा आँखे फाड़रही थी। डॉलीभी चाय पीना भूलगई थी।

"उसका सबूत यह है, डॉली, कि परदुमन मिसरका गोरा लड़का मल्लू भगीके बेटे जंगीके नामसे टी० बी० वार्डमें मरीजोंका स्पूटम् (थूक) फेंकता है और मल्लू भगीका काला बेटा अनिरुद्ध मिसरके नामसे उसी कॉलेजमें फर्स्ट इयरमें पढता है। पैदाइशके वक्त क्वीन मेरिज्में, डॉली, बहसके दूसरे दिन मैंने दोनोंको बदलदिया था।"

आत्मरक्षा

मेजर अमरसिंह सिपाही आदमी थे। स्त्रियोंको स्वाधिकार या स्वतन्त्रता देनेके वे सख्त खिलाफ थे। उनके विचारमे स्त्रियोंका कार्य-क्षेत्र घरके भीतर था और पुरुषोंका उसके बाहर। एकका दूसरेमे हस्तक्षेप उन्हे अखरता था। इसी कारण वे स्त्रियोंके आन्दोलनोंको क्रोधकी नजरसे देखते थे। अपनी स्त्रीको भी वे काफी शासनमे रखते थे। पर उनकी स्त्री थी काफी पढ़ी-लिखी। और उनकी उत्कट इच्छा थी कि वे नारी-सम्बन्धी भारतीय आन्दोलनोंमे खुलकर भाग ले। पर इस क्षेत्रमे उनका सहयोग केवल कुछ मासिक चन्देतक ही सीमित रहपाता था।

अन्य फौजी अफ़सरोंकी पत्नियोंको अपने पतियोंके हाथमें हाथ डाले घूमते देख मिसेज सिंहके हृदयमे गुदगुदी होती और वे भी चाहती कि उसी प्रकार उनका पति भी उन्हे लेकर बाहर निकले। पर मेजर सिंहकी राय इस सम्बन्धमे निश्चित थी। वे कहाकरते कि अच्छी स्त्री अच्छे सिक्कोंकी तरह है जिन्हे उनका मालिक घरके कोनेमे गाड़कर रखता है और बुरी स्त्री उन घटिया-खोटे सिक्कोंकी तरह है जो बाजारमें चलते हैं। मिसेज सिंह मजबूर थीं, इस दलीलके बाद कुछ कहना व्यर्थ था। फिर मेजर सिंह पुंसत्वकी उस सीमापर थे जहॉ पुरुषको अपनी नारीपर हाथ उठानेमे आपत्ति नही होती।

अपना अधिकार जतानेमे मेजर सिंह विशेष जागरूक रहते। शब्दों और घुड़कियोंसे वे अपने दैव-दत्त अधिकारकी रक्षा करते। और जहॉ इनसे काम न चलता वे घूमनेवाली छड़ी और केनका भी सहारा लेते। मिसेज सिंह पहले तो इस अमानवी-असभ्य व्यवहारके विरुद्ध आवाज उठाती रहीं पर धीरे-धीरे उनका विरोध सैनिककी शक्तिके सामने कमजोर पडगया। उन्होने अपने आपको नियतिका ग्रास समझ कवलित होनेकेलिये छोडदिया।

परन्तु अन्दर-ही-अन्दर उनका दिल सख्त होनेलगा। जैसे-जैसे स्त्रियोंकी विविध सस्थाएँ देशमें जाति और पुरुषोसे अपने अधिकार माँगने लगी वैसे-ही-वैसे उनके भीतर भी आग सुलगनेलगी और वैसे-ही-वैसे मेजर सिंह की कठोरता उनके प्रति बढतीगई।

जब अन्य फौजी अफसर स्त्रिओके अधिकारोंके बारेमे सहानुभूति-पूर्वक मेजर सिंहसे बात करते वे भड़क उठते, कहते—भाई, उनका स्थान तो भगवानने यथोचित बनादिया है। उनका काम है प्यारकी मिलकियत सम्हालना, बच्चे जनना और उन्हे देखना-भालना। निश्चय इन कामोंमे वे सर्वथा स्वतन्त्र हैं। मर्द इन बातोंमे उनका सदा मुँह ताकेगा। बाकी रही अधिकारोंकी बात, तो उसके सम्बन्धमे मेरी एक निश्चित धारणा है। स्त्रियाँ कहती हैं कि वे अपने जन्मसिद्ध अधिकार पुरुषोंसे छीनलेगी। इसमें दो बाते हैं। पहली तो यह कि यदि उनके अधिकार जन्मसिद्ध हैं तो उनके लिए बगावत क्यो? जन्मसिद्ध अधिकार तो जन्मसिद्ध हैं जैसे पुरुष न होकर स्त्री होना, भूखका लगना, जाडेमें सर्दीका महसूस होना। उनकेलिए किसीको लडना नहीं पडता। जन्मसिद्ध अधिकार वे हैं जो जन्म लेनेके नातेही शिशुको स्वतः मिलते हों। सो जिन अधिकारोंकेलिए गोल बाँधकर झण्डा लेकर निकलनेकी जरूरत पडे वे जन्मसिद्ध क्योंकर हैं यह मेरी समझमें नही आता। फिर रही बात अधिकारोंकी पुरुषोसे छीनलेने की। इस दूसरे सम्बन्धमे स्त्रीकी अवस्था दुश्मनकी होजाती है जो मोर्चा लेनेके लिए हमारी ओर बढ़ता है। ऐसी अवस्थामे हमे उनको वैसा उत्तर देना चाहिए जैसा हम झटपर दुश्मनको देते हैं। जो शख्स हमसे अपने मनसे निश्चित किए अधिकार 'छीन' लेना चाहे उसके साथ हम हमदर्दी क्यों करे? हम तो उन्हे और जोरसे पकड रखेगे।

मेजर सिंह अपनी बात कुछ खास मोर्चाबन्दीसे कहते। कभी-कभी अपनी लम्बी नुकीली मूछोंपर हाथ फेरते कभी बगलगीर पिस्तौलकी पुश्त

पर उँगलियाँ घुमाते। उनके पैर भी बोलते वक्त आगे-पीछे बढ़ते रहते। सुननेवाले उनकी दलीलकी सादगीसे कुछ क़ायल-से होजाते या उनके जङ्गली, वहशी ख्यालोंको इलाजके बाहर समझ मिसेज सिंहकी किस्मत पर मनमें अफसोस करते उठजाते।

इधर जब मेजर सिंह घर आते तो मिसेज सिंहसे भिड़जाते।

आतेही ऊँची आवाजसे कहते—"मर्दका नाम हँसाते हैं ये मर्दके पुतले, औरतके गुलाम!"

मिसेज़ सिंह रोजकी बात जानकरभी पूछतीं—"कौन?"

"वही, वही मरदूद, जो तुम्हारे जन्मसिद्ध अधिकारोंकी माला जपते हैं और तुम्हारे गुन गाते हैं—हिजड़े!" वे कहते।

"पर आप उन्हें गालियाँ क्यों देते हैं? वे आपको गालियाँ तो नहीं देते।" मिसेज सिंहके मुँहसे नारी-अधिकारोंके हिमायती, अपने दोस्तोंके शौहर अफसरोंकेलिए इतना निकलही जाता।

"हाँ, हाँ, हिजड़े! हजार दफे हिजड़े! औरतके गुलाम! मैं उनको सौ दफे रगड़ दूँगा, उन नामर्दोंको, उन वेमूछके भडुओंको जो अपनी बीवी और बहन दोनोंको लिए फिरते हैं"—मेजर सिंह उबलने लगते।

"जरा दम तो लो। कैसी बात कहते हो? आखिर वेभी तुम्हारे ग्रेडके हैं, तुम्हारेही 'केडर' के। अगर कहीं वे सुनलें।" मिसेज सिंह अपने पतिको नसीहतके तौरपर कुछ समझानेकी कोशिश करतीं।

पर वहाँ आगमें घी पड़जाता। मेजर सिंह भड़क उठते।

कहते—"मैं डरता हूँ उन कायरों, बुजदिलोंसे? उन काग़जके पुतलों, उन नामर्दों से? ग्रेड और केडर क्या चीज होती है? लाएँ तो इस सीनेकी चौड़ाई—" मेजर सिंह बँधी टाईके नीचेसे हाथ डाल बटन लगे कमीजको दोनों हाथोंसे झटकेसे खींच सीना खोल दिखलाने लगते—

"औरत हैं औरत वे। सीना तो वह जो जब एकबार औरतको दबाए तब औरत पनाह माँगने लगे। उनकी औरतें क्यों क्लबोंमें मर्द खोजती फिरती हैं? अभी इसी सीनेसे टकरानेकेलिए उन्हीकी बीबियाँ ईजानिबका कितनी ही बार दामन पकड़चुकी हैं और ईजानिब उन्हे ठुकराचुके हैं।"

"देखो, उनकी छतें मिली हुई हैं हमारी छतसे, गजब होजाएगा अगर कहीं उन्होंने सुनलिया।"

"सुनलिया। सुनले साले! क्या करलेंगे हिजडे हमारा? मैं दोनली उनकी ······में······दूँगा······" मेजर सिह गला फाड़ने लगते।

मिसेज सिंह कानपर हाथ धरलेतीं। फिर कहती—"भगवान्केलिए दम लो चुप करो ·· ।"

"भगवान्की बच्ची! तुम्हे इन बातोंसे क्या मतलब? जो जबान लड़ाए जाती है उन मादर······केलिए। मैं सौ बार कहूँगा — उनकी माँकी ·· उनकी माँकी ··· " और अगर सौ बार नही तो तीन-चार बार तो कम-से-कम मेजर सिंह अपनी गाली दुहरा ही देते।

"जरा आदमियतकी तमीजका खयाल करो। क्या बकते हो। गाली किसी सभ्यतामें तहजीब नही समझीजाती।"

"हरामजादी! तेरे बाप-दादे हैं वे कुत्ते जो उनकेलिए तेरे सीने में दर्द उठने लगता है। और मुझे तहजीब सिखाएगी तू, औरत? जो··· फाड़कर बन्दरकी औलाद जनती है?" फिर एकाएक मेजर सिंह बरस पडते। धम्-धम् होने लगता और मिसेज् सिंह सिपाहीकी चोटसे तिलमिला उठतीं, घायल हो गिरजातीं।

नौकरके हाथमें बदलनेवाले कपड़े धरे रहजाते। घरके कोनोंमें छिपे इस काण्डको देखनेवाले नौकर-नौकरानियाँ इस धम्-धम्के बाद दबे पाँव दूर निकल जाते।

× × × ×

"जुहार, तुम्हारे ऊपर मुझे नाज़ है। तुम्हारी-सी औलाद पाकर मेरा सीना तनजाता है। ईजिप्टकी लड़ाईसे आए डिस्पैचोंको जब कमाडिंग ऑफिसर मुझे दिखाते थे गर्वसे मेरा माथा ऊँचा उठजाता। दूसरे दिन बधाइयोंके नारे बुलन्द होजाते थे।" मेजर सिंह पास बैठे मिस्रानी-मोर्चेसे लौटे बहादुर बेटे जुहारसिंहका कन्धा थपथपातेहुए बोले।

पाँच सालका उनका बेटा मशालसिंह उनकी जाँघपर था और चौदह वर्षका जुझारसिंह बड़े भाईका हाथ पकड़े उसकी वर्दी, स्टारों और तमगोंको ग़ौरसे देखरहा था। भाईकी दुनियाँ उसके स्वप्नका ससार थी। कभी वह उसके स्टारोंपर हाथ फेरता, कभी पीठको सहलाता। मशालभी उसे झपकी-झपकी आँखोंसे देखरहा था।

"देख, जुझार, देखता है अपने भाईकी वर्दी, उसके स्टार, उसके तमगे? मर्द है तेरा भाई, बहादुर। तूभी उसीकी तरह मर्द बन, बहादुर।" मेजर सिंहने गर्वसे कहा। उनका दाहिना हाथ मूछोंपर था।

"कमान कब आएगा, जुहार? तेरा साथ उससे कब छूटा?" मेजर सिंहने बेटेकी ओर कुछ झुकतेहुए फिर पूछा।

"मैं वह खबर आतेही आपको नहीं देसका था, पिताजी, माफ करेंगे।" जुहारसिंहने कुछ डरते-डरते कहा।

"बोलो, जुहार, बोलो—क्या बात है?" मेजर सिंहके ललाटपर बल पड़गए थे।

"कमान करीब दो हफ़्तोंसे इटलीका क़ैदी है।"

मेजर सिंहने दिलपर हाथ रखे खबर सुनी। कुछ देर चुप रहे फिर धीरे-धीरे बोले।

"कमान इटालियनोंका क़ैदी है। सिपाहीकेलिए तीन ही सूरतें हैं—जीत, मौत, या क़ैद। क़ैद मौतसे बुरी नहीं। कमान क़ैदी है। खैर!"

मेजर सिंह फिर बोले—जा, जुहार, अपनी माँके पास। वह बीमार है। पर देख, उससे कमानकी क़ैदकी बात न कहना।

जुहारसिंह भाई जुझारसिंहके साथ माँके कमरेकी ओर चला। मेजर सिंह मशालको एक बार छातीसे जोरसे चिमटाकर उसे धीरे-धीरे अलग करते अपने कमरेमें चलेगए।

× × ×

"मिसेज सिंह, इसका प्रतिकार करना ही होगा। मेजर सिंहका आचरण नारी-जातिकेलिए अपमानकी बात है।" मिसेज सेठने कहा।

"कुछ करना ही होगा तो कुछ करूँगी, मिसेज सेठ।" मिसेज सिंह ने उत्तर दिया।

"क्या करोगी, मिसेज सिंह? तुम्हारे किये क्या होसकेगा? यह काम हमें अपने हाथोंमे लेने दो।" मिसेज फारूक़ीने मिसेज सेठकी बात को ही दुहराया।

"बात उतनी आसान नही है, मिसेज फारूक़ी, जितनी तुम समझती हो। तुम्हारे पतियोंपर आ बनेगी। उन्हे उनसे डुएल लड़ना पड़ जाएगा, अगर तुम लोगोंने उनके घरके इन्तज़ाममे हाथ लगाया।" मिसेज़ सिंहने जोरसे कहा।

"फिर मरोगी, मिसेज सिंह।"

"फिर कोई चारा नही दीखता।" मिसेज सेठ और मिसेज़ फारूक़ी एकसाथही बोलउठी।

"एक बात है, सुनो।" मिसेज़ सिंहने दोनों सखियोकी ओर मुखातिब होकर कहना शुरू किया। बात यह है कि जिस तरह ये नहीं चाहते कि कोई और उनके घरेलू इन्तजाममे दखल दे, मैं भी नहीं चाहती कि उसमें मेरा कोई दोस्त हाथ डाले।"

"फिर?" दोनोंने एकसाथ पूछा।

"फिर उसका इन्तजाम मैं आप करूँगी।"

"कुछ सोचा है, मिसेज़ सिंह?" मिसेज फारूकीने फिर पूछा।

" सोचा है, मिसेज फ़ारुकी। कुछ सोचा है, कुछ सोचरही हूँ।" मिसेज सिंहने मतलब-भरी निगाहसे दोनोंकी ओर देखतेहुए कहा।

मिसेज़ सेठ चुपचाप सुनती, कुछ गुनती रही। फिर धीरे-धीरे उन्होंने कहा—"मेरी जाँ, मिसेज सिंह, कर चाहे जो, पर एक बात याद रख कि जो कुछ तुझे करना हो समझ-बूझके कर, सोच-विचारकर। मेजर सिंह बड़े बेढब आदमी हैं।"

"मिसेज सेठ, मेजर सिंहको एक अरसेसे मैं जानती हूँ, और मेरा उनका जानना कुछ खुशी नही सदमेसे भरा है। अगर मैं कहती हूँ कि मैं कुछ करूँगी तो बेशक सबकुछ देखकर, ऊँचानीचा सोचकर ही करूँगी।" मिसेज सिंहने कुछ मुसकरातेहुए पर प्रचुर गंभीरतासे उत्तर दिया।

उनकी सहेलियाँ खामोश होरहीं।

× × ×

इटलीमे मुसोलिनीने आत्मसमर्पण किया, इटलीकी सरकार बदली। ब्रिटिश और अन्य मित्रराष्ट्रोंके कैदी छूटे। मेजर सिंहका लड़का लेफ्टिनेंट कमानसिंह भी छूटकर घर आया। बरेलीकी फौजी छावनीमें सभी माँ-बापके साथ थे। बड़े भाई कैप्टेन जुहारसिंहकी छुट्टी अभी खतम नहीं हुई थी। भाईके आनेकी उम्मीदमे उसने उसे बढ़वाली थी।

कमानके आनेसे घरमे खुशियोंके तांते लगगए। दोस्त-अहबाब, सगे-सम्बन्धी सभी मिलने आए। मेजर सिंहने खुलकर उनका स्वागत किया। दावतोंपर दावते हुईं। नौकर-नौकरानियोंको मुँह न खोलना पडा। उन्हे मन-चीती बख्शीशे मिली। इतना देकर भी मिसेज सिंह और मेजरको अफसोस था कि उनके पास कारूँका खजाना न हुआ। बेटोंकाही एक सम्बन्ध था जिसपर मेजर सिंह और उनकी पत्नी समान-रूपसे सोचते, प्रसन्न होते या चिन्ता करते।

इसलिए खुशीकी चहल-पहलमें किसी तरहकी कमी न होने पाई। मेजर सिंह मिसेज सिंहपर आज प्रेयसीपर यारके प्यारसे लट्टू थे। उनकेलिए आज वे सबकुछ करसकते थे।

× × ×

देर रात गए मेजर सिंह पत्नीके कमरेमे घुसे। मिसेज सिंह राह देखरही थी। उनके चमकते गोरे रगपर उनकी गहरी धानी साड़ी बहुत फबती थी। बीस साल पुराना उनका जादू-भरा रूप लौटआया था।

मेजर सिंहने कमरेमे दाखिल होते ही बीबीको दिलसे लगालिया। फिर वे उसे पलगकी ओर खीच लेचले। पत्नीने किसी प्रकारकी आपत्ति न की पर उसकी मुस्कराहटमे एक प्रकारका भारीपन था। उसमें एक दबी वेदना सी जानपड़ती थी।

मेजर सिंहकी सारी कठोरता कोमलतामें बदलगई थी। बीबीको वे प्यार करनेलगे। अग-अगसे। उसके अग-अगपर वे टूट-से रहे थे। पर बीबीका प्यार उस औसतसे कहीं नीचा उन्हे जानपडा।

"बात क्या है, मेरी रानी?" उन्होंने लडखड़ाई जबानमे पूछा।

"मैं इन्कार नहीं करूँगी कि बात है और गहरी है।" उत्तर मिला।

आवाजका भारीपन कुछ मानी रखता था, मेजर सिंहने जाना। उनकी मुद्रा भी कुछ गम्भीर होनेलगी। खुशी और रगमे विघ्न पड़ता देख वे कुछ मन-ही-मन झल्लाएभी।

पर धीरे-धीरे बोले—"क्या बात है, कुछ कहो तो।"

"कहूँगी, नाथ। सब कहूँगी। बात कुछ भारी है, गहरी। पर मुझे उसे कहनेमें घबराहट नही है क्योंकि मैं सत्यकी रक्षाकेलिए उसे कहने जारही हूँ।" मिसेज सिंहका दम टूटने-सा लगा।

"बेखौफ कहो मेरे बहादुर बेटोंकी माँ। आज उनकी बहादुरीकी रात

है। और अगर उन बेटोंमें अपने सीनोंपर जर्मनी और इटालियनोंकी गोलियाँ सहनेकी ताकत है तो उनके बापमे एक बात सुननेकी कूवत है, चाहे वह बात कितनीही कड़ी, कितनीही बुरी क्यो न हो।" मेजर सिंह कुहनीके बल कुछ आडे होगए।

"सुनिए मेरे देवता। आज आपको मेरे आचरणसे ताज्जुब होरहा होगा। और आजकी खुशीके मौकेपर कोई मेरे व्यवहारको उचित नही कहेगा। पर मैं जानती हूँ इसकेलिए इससे मौजूँ दूसरा वक्त न होगा। सालोकी दिमागी लडाईके बाद आज मैंने उसे आखिर कह डालनाही निश्चित किया है।" पतिके पैरोमे उलझे अपने पैरोंको धीरे-धीरे निकालते हुए मिसेज सिंहने पलगपर बैठतेहुए कहा।

मेजर सिंहका दम घुटा जारहा था।

मिसेज सिंहने जरा दम लेकर फिर कहना शुरू किया—"देखिए, मेरे स्वामी, सालों मैंने उस बातकी निस्बत अपने-आपसे युद्ध किया है और केवल अब तय करसकी हूँ कि उसे आपको बतादेना अनिवार्य है। और वह बात जर्मन और इटालियन गोलियोंसे कही अधिक चुटीली है।"

मेजर सिंहके दिमाग़पर एकसाथ अनेक भावनाओंका हमला होरहा था। उनका दिल जोर-जोरसे धड़करहा था।

"बोलो"—एक कमजोर आवाज सुनपड़ी।

"सुनो, स्वामी, मेरे चार बेटोमे केवल तीन तुम्हारे हैं, चौथा नहीं। पर चौथा कौन है, यह मैं तुम्हे नही बतासकती चाहे तुम मेरी जानही क्यों न लेलो।" मिसेज सिंहकी हल्की आवाज कमरेके भीतर और मेजर सिंहके दिल और दिमागमे भरगई, रह-रहकर गूँजनेलगी।

"ऐं" एक टूटती भर्राई आवाज सुनपड़ी।

मेजर सिंहकी आँखे जैसे पथरागई थी। जीभ तालूमें सटगई थी।

होठ खुले थे, सामने अनजान उठेहुए।

मिसेज सिंह निश्चल थी। उनकी मुद्रा विजेताकी-सी थी।

× × ×

मेजर सिंह दिन-दिन सूखतेगए। उनकी हालत देख लोगोंको तरस आनेलगी। उनके दुश्मन भी उनकी दशापर रहम करनेलगे। वे क्या-से-क्या होगए और क्या?—कोई न समझसका। उसके जाननेवाले केवल दो थे—मिसेज सिंह और खुद वे।

पर कोई चारा न था, न उनकी मुसीबतका कोई इलाज। जब उनके पास बेटे पहुँचते, तकलीफकी चर्चा करने, वे खामोश होजाते। फिर धीरे-धीरे कहते—मेरा मर्ज लाइलाज है।

बुरी हालत थी मेजर सिंहकी, पागलकी-सी। अपने चारों बेटोंको प्राणोंसे बढकर वे चाहते थे। उनके पीछे वे अपनी जान हथेलीपर लिए फिरते थे। पर अब उनकी ओर देखना भी उनका मुहाल था।

जब किसीपर अपने आप उनका प्यारका हाथ उठता, कलेजेमें चुभता-सा एक दर्द उठआता, कसक होने लगती। चोरका-सा दिल धड़कने लगता। सोचते—"मुमकिन है यही लड़का चौथा हो जो मेरा नहीं है।" दिल थामकर मेजर सिंह बैठजाते।

पत्नीके कमरेमें जाना मेजर सिंहने उसी रातसे छोड़दिया था जिस रात वह जहर-सी बात उन्होंने सुनी थी। उसका मुँह देखनेसे उन्हें नफरत होगई थी। उसके प्रति उनके फर्ज खत्म होगए थे।

× × ×

मिसेज सिंह कमरेमें पड़ी थी कुछ चिन्तित-सी। आज वह फिर कुछ तय कररही थी।

सहसा कमरेका दरवाजा धीरे-धीरे खुला ! मेजर सिंहकी दुबली मरीजकी-सी शक्ल दरवाजेमे झुकी। मिसेज सिंह उठबैठीं।

"आइए !" वे बोलीं। "इधर बैठिए।"

पर मेजर सिंह पलगपर नहीं बैठे फर्शपर घुटने टेक बैठगए।

फिर बोले—"देखो तुम्हारा हमारा सम्बन्ध होकरभी भगवान्को वह न रुचा। हम दोनों अलग-अलग होगए। मेरा मरज तुम जानती हो—आज बतादो वह चौथा बेटा कौनसा है जो मेरा नही।" आवाज़ भर्राईहुई थी, सदाके संगदिल सिपाहीकी आँखोमे आँसू भरे थे।

दम लेकर उसने फिर कहना शुरू किया—"अब मुझसे नही सहा जाता। अब जीऊँगा नही। इस आखिरी वक्तमे बतादो असल बात, मेरी इस आजिजीपर तरस खाकर।"

सिपाहीकी तलवार टूटगई थी। जवाँमर्दका सिर आज औरतके क़दमोंपर था।

एकाएक मिसेज़ सिंहने कहा—"आज मैं तुम्हे सच ही बता देनेवाली थी। सब झूठ है। सारे बच्चे तुम्हारे हैं। मैंने अपनी रक्षाकेलिए यह उपाय सोचा था।" मिसेज़ सिहकी सिसकियाँ बँधगई थी।

सदाचारका वज़न

शम्भू मिश्रको सदाचारका बचपनही से रोग-सा होगया था। सयुक्त प्रान्तके पूरवी जिलों और बिहारके लोगोमे आचारका हिस्सा ज्यादा पडा है, विचारका उतना नही। उनका चूल्हा-चौका एक खास वजनकी चीज है जिसपर बाज वक्त उनकी औकाततक निर्भर करती है। लोगोंसे मेरा तात्पर्य यहाँ विशेषकर ब्राह्मणवर्गसे है। शम्भू मिश्र गोरखपुरके बाँस-गाँव तहसीलके रहनेवाले थे और बलिया जिलेमे असहयोग आन्दोलनमे काम करते थे। सन् १९२१ ई० के आन्दोलनमे औकातके न रहनेपर भी अनेक लोगोंको जेलमे 'ए' क्लासमें रखागया था। जेलमे 'ए','बी','सी' वर्ग अक्सर जेलरकी रिपोर्टपर स्थिर किएजाते थे। पण्डित शम्भू मिश्रकी कुलीनता और सदाचारकी बडी ख्याति थी। ब्राह्मण जेलरने रिपोर्ट कुछ मजेकी दी और पण्डितजी 'ए' क्लासके कैदी बने।

पर इससे यह न समझना चाहिए कि 'ए' क्लासके आराम उनके लिए बहुत आकर्षक थे, क्योंकि जब काशीके जिला जेलमें कुछ लोगोंने 'ए' वर्गके आरामोंके खिलाफ आवाज उठाई और 'सी' क्लासकी पाबन्दियोंको अपनानेकी ठानी तब उनका झण्डा पण्डितजीके हाथोमे था। मतलब यह कि चूँकि करीब सूबे-भरके 'ए' वर्गके राजनैतिक कैदी काशीके जिला जेल मे रखेगए थे प्रान्त-भरके प्रतिनिधि वहाँ परस्पर मिलते थे। अनेक तो उनमें महाराष्ट्र, गुजरात और मद्रासके थे। गरज कि पण्डितजीको वहाँ देश के विभिन्न प्रान्तवासियोंसे मिलनेका मौका तभी हुआ। तभी उन्होंने पहले-पहल जाना कि कश्मीरी पण्डित चुटिया नही रखता और प्रायः जनेऊभी नहीं पहनता। तभी उन्हे एक और ठेस लगी यह देखकर कि महाराष्ट्रका चितपावन ब्राह्मण या मद्रासका धर्मध्वजी साधारणतया शौचसे लौटकर

बार मिट्टी नहीं लगाता। उनके पॉवों तलेसे जमीन सरकगई। खुद उन्हे मनुस्मृतिके पॉचवे-छठे अध्याय वरजबान थे और वे शौचसे लौटकर पहले बाएँ हाथमे तीन बार फिर दोनोमे एक साथ तीन बार और मिट्टी लगाते थे। बाद, जब गॉवमें पधारे एक साधुको उन्होने इक्कीस बार मिट्टी लगाते देखा तब उनकी चेष्टा भी उससे होड़ करनेलगी।

× × ×

पाणिनिकी अष्टाध्यायीपर अटूट श्रद्धा होनेपर भी पण्डितजीका सस्कृत अध्ययन लघुकौमुदीतक ही सीमित था। पर लघुकौमुदी थी उन्हे कण्ठाग्र। पण्डितजी पहले अपने गाँवके ही अपर प्राइमरी स्कूलमें मुदर्रिस थे परन्तु उनकी प्रखर बुद्धिसे प्रभावित होकर सब-डिप्टी इन्सपेक्टरने उन्हे केवल ॲगरेजीमे मैट्रीकुलेशन परीक्षा देनेकी सलाह दी। पण्डितजीने बात-की-बात मे मैट्रिकुलेशन पास करलिया। फिर तो शेरके बच्चेको खूनका स्वाद मिलचुका था, धीरे-धीरे वे ग्रैजुएट भी होगए। इसी समयसे कुछही पहले उनकी नियुक्ति अङ्गरेज़ी हाई स्कूलमे हिन्दी अध्यापकके पदपर होचुकी थी।

× × ×

सन् १९३०--१९३१ ई० मे काग्रेसने एक बार और जोर मारा। कार्यकर्त्ता जेलोमे भरनेलगे। पण्डितजी चूकनेवाले कब थे— शहीदोंमे कबसे उनका शुमार होता था। फिर इस समय तो नौकरशाहीकी बागडोर सर मैलकम हेलीके हाथमें थी। और कानपुरके जमीदार ऐसोसिएशन वाली मीटिङ्गमें उसने बागियोंको ललकारा भी था। पण्डितजी गोरखपुरसे सजा पाकर फैजाबाद जेलमे जापहुँचे।

इस बार उनकी चुटिया पहलेसे काफी पतली थी, पर उनका हाथ कते सूतका बना जनेऊ था अबभी काफी मोटा। पाप-पुण्य, बेईमानी-ईमानदारी के ब्यौरे उनके मुखसे ताने-बानेकी तरह उलझे-सुलझे निकलते ही रहते। गॉधीजीके गायका बछड़ा मरवानेपर उनका सारगर्भित व्याख्यान हुआ

था। दूसरेकी चीजकी ओर देखना भी उन्हे चोरी लगती और दूसरेकी बहू-बेटीपर नजर डालना भी उन्हे व्यभिचार जॅचता। किसीने उन्हे अपने आदर्श से गिरते न देखा। चोरीके सम्बन्धमे तो उनका आदर्श था वह क़िस्सा, जो उन्होंने लोअर प्राइमरी दर्जेमे पढा था—बगदादी फक़ीरका किस्सा जिसमे फकीरने नदीकी धारामे बहतेआए सेबको उसीके सहारे पीछे चलकर उस बागवानको लौटाया था जिसका वह सेब था और जिसको बिना मालिककी इजाज़तके चखलेनेके कारण उसने अपनेको चोर कहकर उससे सजा मॉगी थी। उस क़िस्सेको पण्डितजी वक्त-बेवक्त कहते भी थे।

× × ×

पण्डितजी छूटे। और लोग तो छूट-छूटकर फिर जेल गए परन्तु पण्डितजीके बच्चेका मुण्डन था और कर्ण-छेदन। संस्कार द्विजोंकेलिए अनिवार्य हैं और पण्डितजी द्विजराज थे। उन्होने झट अपने जेल न जाने की स्वीकृति गॉधीजीसे मॅगाली। उस आन्दोलनमे धर-पकड जो काफी सरगर्मीसे होनेलगी तो कॉंग्रेसवालोने भी कुछ हिस्सोंमे छिपकर काम करना शुरू किया। गुप्त-दाताओंके नामके रजिस्टर खास तरहसे छिपाकर रखे जानेलगे। मन्त्रीका नाम छिपाया जानेलगा और दूसरे ऐसे कामभी प्रायः चाणक्य-नीतिके अनुसारही लुके-छिपे किएजाने लगे। पण्डितजीने अपना कार्य-क्षेत्र बलियासे उठाकर घरके पास गोरखपुरमे ही रखा। इस समय वे जिला कॉंग्रेस कमेटीके मन्त्री थे और आय-व्यय तथा आन्दोलनका सञ्चालन-भार उन्हीके ऊपर था। चन्दा माँगना और उसका उचित रूपसे व्यय करना सब कुछ उन्हींके हाथमे था। औचित्यके सम्बन्धमें उनका वचन स्वयं प्रमाण था। और जिन्होंने गत वर्षोंमे उनका कार्य-क्रम देखा था या जो चन्देके धनके व्ययमें पूछ-ताछ करनेके अधिकारी थे उनकेलिए पण्डजीका आचरण आदर्श था।

× × ×

इधर पण्डितजीकी अपनी दुनियाँमे एक साधका बगीचा लगरहा था। उनकी पहली पत्नीका देहान्त होचुका था और लोगोंके जोर देनेसे उनका विवाहभी रामगढ़के तिवारियोंके-से सम्पन्न कुलमे दोबारा होगया था। विवाह हुए हो तो गए थे करीब दो साल परन्तु रामगढ़के तिवारी कुछ मामूली हैसियतके तो हैं नही जो शादीमें ही लड़की बिदा करदे। गवनेकेलिए उन्होने उसे रखछोड़ा था। फिर पण्डितजी अब जाकर उसे लिवालाए और शास्त्र-विधिसे लगे उस नव वधूको भोगने। वात्स्यायन के सूत्रों और कालिदासकृत रघुवशके उन्नीसवे और कुमारसभवके आठवे सर्गोंकी छायामे उनका प्रौढ-प्रेम पगनेलगा।

परन्तु पण्डितजीके पौरुषपर धीरे-धीरे जिस शक्तिने प्रभाव डाला वह थी नारीकी अल्हड़ काया। नव-विवाहिता रस-कलशलिए उतरी थी, पण्डितजीका अन्तर सिंचगया। उनकी विलास-वल्लरी लहलहाउठी। पर उनका आत्मावलबन हिल गया, उनके व्यवहार-सिद्धान्त छिन्न-भिन्न होगए। एकमात्र उनकी कामना एकान्तकी सखीका सङ्केत-पूरक होगई। और इन सङ्केतोंको धीरे-धीरे बाढ-सी आगई। फरमाइशोंको जबान मिल गई थी शेष-शारदाकी। पण्डितजीका सीमित अर्थ-सभार उससे कुचल गया, उस बोझको उठा न सका। परन्तु उनका मन फिर भी न हारा। नारीकी एकान्तमे आनन्दकी घड़ीमे कीहुई प्रार्थना जमीन-आस्मानके कुलाबे मिलाकर वे पूरी करते।

भूमि-बञ्जर हृदयके इशारेपर बधक हुए, फिर बिकगए। यवाकुर की भाँति ब्राह्मणीने कोमल वशाकुर प्रसव किया, दूधकी भाँति श्वेत, नवनीत-सा कोमल। पण्डितजी गद्‌गद् होगए। रामगढके तिवारियोंका नाती था नवजात शिशु, उसके जन्मोत्सवमे कोर-कसर क्योकर रहती। पैसे लुटे, खटकिने नाची। कर्जसे पण्डितजीने हाथ नही खीचा। कुछ पुराने दुश्मनोंने उनकी सारी हविस इस अवसरपर पूरी करदी।

× × ×

भूमि-करके विरुद्ध आन्दोलन अभी जारी था और जोरोंपर था। बुझनेवाली आग भडकती है, भयानक होती है। आन्दोलन घनघोर रूप धारण किएहुए था। पण्डितजीके पास चन्देकी अटूट रकम जमा थी और सावनकी झडीकी भाँति कॉग्रेसके गुप्त दफ्तरमे बरसरही थी। पण्डितजी उसके आय-व्ययके एकमात्र स्वामी थे। न तो उसका हिसाब था, न ब्यौरा। और जरूरतही उनकी क्या थी? कॉग्रेसके छोटे-बडे सभी कार्य-कर्त्ताओं को पण्डितजीकी साख और ईमानदारीपर भरोसा था। मुमकिन नही था कि पण्डितजीकी अमानतमें रखा कॉग्रेसकी रकमका एक पैसा भी इधर-से-उधर होजाय। परन्तु स्वय पण्डितजीको अपनी इस व्यवस्थामे सन्देह था।

महाजनोंने कर्ज अदायगीकेलिए पडितजीको नोटिसपर नोटिस दी। पर पण्डितजी कुछ प्रबन्ध न करसके। अब वक्त ऐसा आया कि जान पड़ा उनको सारी साख दुनियाँसे उठजाएगी। फिर रामगढके तिवारियों के वे दामाद थे। यह कैसे सम्भव था कि वे रुपये-पैसेके सम्बन्धकी अपनी हेठी सुसरालवालोंके सामने स्वीकार करते। उस बदनामीसे तो मरना भला था। तरीके केवल दो थे—या तो विषपान द्वारा शरीर-त्याग, या अमानत के धनका उपयोग। पहला तरीका अख्तियार करना असम्भव था। पत्नी की भरी-जवानी और पडोसियोंकी उसपर हसरत-भरी निगाह। दोस्तोंने कितनी बार उस मादक खूबसूरतीकी उम्मीदमे पण्डितजीको कर्तव्यकी याद दिलाई थी—हजारों माईके लालोंका जेलमे घुल-घुलकर मरनेकी बात कही थी— मगर पण्डितजीकी आँखमें धूल झोंकना आसान न था। अपना घर सम्हालना ज्यादा जरूरी समझा और वे अपनी बीबीको तेज़ निगाहोंसे छाये घर बैठेरहे।

फिर कर्ज कैसे चुके? अब दूसराही उपाय सम्भव था। उन्हे जान पडा कि चोरी दिलका मैल है, वह दिलके साथ सटी होती है। मालके साथ उसका कोई सम्बन्ध नही। चोरी उसे कहते हैं जिसमे दूसरेका माल व्यक्ति

सर्वथा स्वायत्त करले। यह मन्शा उनकी अमानतके निस्बत हरगिज नहीं है, हरगिज हो नही सकती। अमानतका एक भाग उन्होंने महाजनोंकी राह में कुत्तोंके सामने रोटीकी तरह डालदिया, और फिर एकबार वे अपनी गरदन ऊँची किये चलनेलगे। ईमानदारीके राजमें अब भी उनका साका चलता था। पर उनके ललाटपर कुछ रेखाएँ धीरे-धीरे गहरी होनेलगीं। खयाल इतना जरूर था कि अमानतके रुपये इन्तजाम होतेही फिर जहाँके तहाँ रखदिये जाएँगे। पर इन्तजामकी बात सोचते पण्डितजीकी अन्तरात्मा काँप उठती। उनके रहस्यको कोई जानता न था। धीरे-धीरे इन्तज़ामकी बात भी उनके खयालसे उतरती गयी। धीरे-धीरे बगदादी फकीरके मालिकमें बिना पूछे खाए सेबका क़िस्सा धुँधला पड़नेलगा और कुछ समय बाद पण्डित जीके उदाहरण-आख्यानोंके क्षेत्रसे वह सर्वथा अन्तर्धान होगया।

परन्तु एक बातमें अबभी उनका एकाधिपत्य था। अभीतक उनकी निगाह भूलेभी किसीकी बहू-बेटीपर न पड़ी।

× × ×

वर्त्तमान जर्मन-युद्ध छिड़चुका था। काँग्रेसने व्यक्तिगत सत्याग्रह एलान करदिया था। पण्डितजीका नशा उतरगया था। वे जेल गए और छः महीनेकी सजा काटकर लौटे। घरमें पत्नी थोड़ेही दिनोंमें प्रौढ होचली थी। बच्चोंने उसके रूप-घटसे जीवन पीलिया था। पण्डितजीको उसका यह रूप अच्छा लगा। उनके सन्तोषका वह कारण बना। अगस्तके प्रस्ताव के बाद जो धर-पकड हुई उसमे वे भी पकड़ेगए।

सालभरके बाद वे फिर छूटे। घर लौटे। पत्नीने धूप-नैवेद जलाकर उनकी आरती उतारी। घरका नौकर मुक्खू बुढापेमें एक नगीना लाया। उसका नाम भी नगीना था। वह पण्डितजीके देवतुल्य मुखको अपलक निहाररही थी।

पण्डितजी पचासा लाँघचुके थे परन्तु एक-पत्नी-व्रतीका शरीर तपे

सोने-सा दमकता था। बचपनसेही कसरतके आदी होनेसे इस उम्रमें भी उनका बदन शीशे-सा लगता था। नगीना ठगगई। पण्डितजी उसकी आँखमें गडगए। कहाँ सुक्खूका काला, रूखा-पिचका, सुर्तीसे गन्धाता मुँह, कहाँ पण्डितजीका साफ, डाढ़ी-मूँछ विहीन, चमकता बदन—नगीनाको पण्डितजीका पचामा लगगया। उसने उनपर अपने मोहका जादू फेंका।

× × ×

जवानीका आलम एक आँधी है। आती खुद है, लगती औरोंको है। पण्डितजीकी आँखोंमें नगीनाकी नजर चुभगई। उसे जो उन्होंने निकाल फेंकना चाहा तो मधु-मक्खीके डङ्ककी तरह वह उसीमें टूट-सी रही। पण्डितजी तिलमिला उठे। आँखे उन्होंने बन्द करलीं जिसमें वह न दीखे पर वह भीतर चुभनेलगी। उसने उनके कोयों और पलकोंके बीच बसेरा लिया।

पण्डितजी घुलनेलगे। चोटसे बचनेकेलिए एकान्तका वह सहारा लेनेलगे। पर मुहब्बतके मारे जीवको बियाबाँ खलता है, अकेलापन काटता है। निर्जनतामें उसका मर्ज जोर पकडता है, उसे गिज़ा मिलती है। पण्डित जीका एकान्त उन्हे काटने लगा। वे बिलखउठे।

पत्नीको रामगढ़ जाना था। गई। सूने घरमें सुक्खूकी नगीना पण्डितजीकी परखमें खोगई। बची साधें उचक-उचककर भूलीं और वृद्ध नरने तरुणका बाना लिया। उधर वृद्धके साएसे निकल तरुणीने बचाई साधें बिखेरदीं। जङ्गल सूना था, घरका कोना-कोना बसा।

पण्डितजीके सिद्धान्त नए साँचेमें ढलरहे थे। मनु और याज्ञवल्क्य धुँधले पडगए थे, धर्मके दसों लक्षण विस्मृत होचले थे। एकान्तमें जब वे अपने अतीतको सोचते तब कहते—भगवानकी तरह शायद चोरी और ईमानदारीकी परिभाषाका भी आरम्भ है, और उसके अनेक मंजिल हैं, सुविधाजनक, समयानुकूल!

होली

"तोड़ दिया ?"

बन्नू चुप था ।

"प्याला तोड़ दिया ?" मालिकने फिर पूछा ।

बन्नू फिर चुप रहा ।

"अबे बोलता क्यों नहीं, बन्नूके पट्ठे ?" मालिक तड़प उठे । कमरेसे वे बाहर निकल आए, बरामदेमें, जहाँ बन्नू चायके बरतन धोरहा था, प्यालेके टूटे टुकड़े जोड़-सा रहा था ।

ट्रे बन्नूके हाथसे छूटपड़ी थी और एक नहीं कई प्याले टूटगए थे । मालिकने जो कई प्याले टूटे देखे तो उनके आग लगगई । क्रोधसे काँपतेहुए कमरेमें वे चुपचाप लौटे ।

बन्नू घबराउठा । अगर उसके दो हाथ पड़गए होते तो वह खुश होता । समझता चलो बात टली । मगर मालिककी चुप्पीने उसे बेहाल कर-दिया । वह सोचनेलगा—न जाने कैसी बीते । कहीं मालिक उसकी तनख्वाह न काटले । उसकी छोटी तनख्वाह ही उसके बच्चोंका पेट पालती थी । सो कहीं तनख्वाह पर न आ बने, वह सोचने लगा । और सोचा उसने कहीं डण्डे न बजनेलगे, मालिक कहीं उसकी चमड़ी न उधेड़ दें । फिरभी उसे डण्डेकी चोटकी परवाह न थी, और न था डर उसे चमड़ी उधड़जाने का । बस तनख्वाह कटनेकी बातका ख्यालकर उसका दम घुटनेलगा ।

तेज पड़ती मालिकके पैरोंकी चाप जब बन्नूने सुनी वह ट्रेकी ओर और झुका । उसने चाहा कि ट्रेके भीतर वह समाजाय । सारी देह समेट कर वह जैसे अन्तर्मुख होगया । इन्द्रियोंकी सारी चेष्टाएँ खींचकर वह प्याले

के टुकड़ोंमे डूबने-उतराने लगा। उस समय उसे अगर कोई देखता तो समझता जैसे वह खोदी हुई मूर्त्ति है, उसमे सज्ञा और जीव नही। अपनी देहकी छाया-सी उसकी क्षीण काया चेष्टाओंके सबल निरोधके कारण बेत-सी कॉपने लगी।

सहसा धॉय-सा शब्द हुआ और उसका छः वर्षका बालक रामू चीख उठा। फिर धॉय, फिर धॉय। अब उसने जैसे सहसा जागकर पीछे की ओर नजर फेरी। देखा—मालिकके नेत्रोंसे आग बरसरही है और बेटे की नाकसे रुधिर, मालिक और बेटे दोनोके चेहरे विकृत होगए हैं, एकका क्रोधसे दूसरेका भयसे।

बालक चीखरहा था, मालिक उसे जैसे बार-बार पटकरहा था गालियोकी बौछारके साथ। बन्नू निर्जीव-सा होगया, चुपचाप देखता रहा। न तो उसने बेटेको छुडानेका प्रयत्न किया, न मालिककी अनुनयकी।

और मालिक?

वह बझा था, बालकको मारनेमें, उल्टी-सुल्टी गालियोमे।

"मेरे प्यालोका तूने सत्यानाश करडाला, मैं तेरे बच्चेके टूक-टूक कर डालूँगा।" वे बोले।

उनके प्रहारोंका वेग बढ़चला।

बन्नू धीरे-धीरे उठा और बराम्देसे बाहर निकलगया।

× × ×

जब दारोगाने बन्नूको गालियोंके बीच हिदायत की कि बच्चेको सम्हालकर न रखनेसे अगर कोई वाकया होजाय तो उसके जिम्मेवार मॉ-बाप होते हैं, तब बन्नूने चुपचाप ऑसू पोंछलिए।

दारोगाने और कहा—हरामजादे रोता है। छतसे बेटेको ढाहकर मारडालनेके कुसूरमें अगर काठमे ठोकवा देता तो पता चलता।

बन्नू बेटेकी लाश उठाकर चलागया।

× × ×

मालिक ताल्लुकदार थे। लाखोंके उनके खर्च थे, पर दिल था उनका छोटा। ग़रीबोंको देखकर वे जलजाते थे, नौकरोंकी शान्तिसे लहक जाते थे। जो कुछ उनका खर्च था अपने ऊपर था या हुक्कामोंकी आव-भगतमें किए जलसोंपर।

बन्नूको दो रुपए तनख्वाह मिलती थी जो वक्त-बेवक्त कट ही जाती थे। बड़े भाग मानता वह जब अगले महीनेके शुरूमें दो रुपए उसे नसीब होते। पर खाना किसी-न-किसी रूपमें मिलही जाता था, चिलमके दो-एक कश लुक-छिपके, माँग-चुराकर, वह कहीं-न-कहींसे खींचही लेता था। उसे चाहिए ही और क्या था?

जवानीकी अलमस्तीमें उसीके आलमसे बोझिल एक बारिनसे छेड़-छाड़ की। बारिन रीझगई उसके चढ़े बाजू देख। और बन्नू उसे ले भागा। मालिककी छाया ठण्डी जानपड़ी। जाता भी वह और कहाँ? जरा दम लेनेकेलिए बोझ मालिककी ही छायामें डाल वह बैठरहा। पर मालिककी छाया आग बनगई। उसने बन्नूको भस्म करडाला। मालिकने उसपर छापा मारा और उसकी बारिन छीनली। बारिनने भी उजले-चमकते हाथोंको अपनी ठुड्डी पकड़ते देखा। वह भी मँगतेको भूलगई। दूध-सी सफेद चादरपर उसने अपने मेंहदी-रँगे पाँव धरे।

और बन्नू?

पहले तो वह रोया, बहुत रोया। फिर उसने सोचा जवानी और जाँगर दोनों उसके पास हैं। वह दूसरी बारिन लाएगा, पहलीसे भी सुघड़, उससे भी मस्तानी। उसने तमक-कर बिरहा छेड़ा और उसकी लयमें सुध-बुध खो वह थिरकउठा।

अहीर था वह। वह बन्नू। ऊँचा छरहरा बदन उसका साँचेमें ढलाहुआ, रङ्ग गेहुआँ, चालमें मस्ती, आवाजमें कम्पन। जब सधकर वह एकबार अहीरोंके नाचमें खड़ा होता अहीरिनें उसकी ओर लपक पड़ती। लचीली कमर उसकी बल खाने लगती और उसके एक-एक बलपर अहीरिनाके कलेजोंपर सौ-सौ नागिनें लोटती। वह आखिर टकरागया एक मटकेसे। वह थी कनक।

फिर लाया वह बन्नू अपनी साधकी एक परी, बारिनसे सलोनी, उससे कहीं अलमस्त। मालिककी आँख उसपर भी पडी। पर बन्नूने न जाना और न जाना उसकी साधकी परीने ही उस आँखका जहर।

प्यारके भारसे दबाए-दबाए बन्नू अपनी कनकसे पूछता—"भाता हूँ, कनक।" प्यारके भारसे दबे-दबे कनक उत्तरमें उससे पूछती—"भाती हूँ, बन्नू ?" और दोनो चिमट जाते।

दिन थक चले, पर बन्नू और कनकके प्यार न थके। उनके स्नेह का सोत घर-बाहर सर्वत्र बहने लगा। धीरे-धीरे एक मानव अकुरने कनक के खेतको हरा किया। बन्नू और कनक दोनो अघागए।

× × ×

बारिनका भरा बगीचा उजड़ चला था। ताल्लुकदार साहब हुक्कामोंको डाली लगानेके आदी थे। बागके पौधे सूख चले। हुक्कामोंकी डालीकेलिए, अपने लोभी जीकेलिए उन्हे दूसरी बारिनकी जरूरत थी। उनकी आँखे कनकपर पड़ी और गड गई। पर कनक बारिन न थी।

उन आँखोंका राज उसने पहचाना। एक दिन जब पानी लाते वक्त उसकी नज़र मालिककी खिडकीकी ओर गई, उसने उन्हें उसे एकटक निहारते पाया। आँखे जब चार हुई मालिकने मुस्करा दिया। कनकने रुख दूसरी ओर करलिया और घृणासे एक बार थूककर वह अपने कमरेमें घुसगई।

पर मालिक उसे भूल न सके। जब रात आई और उनके एक जरूरी कामसे बन्नू थानेपर गया, चीखती-चिल्लाती कनक सहसा गायब होगई। बन्नू आया, पर उसने घर खाली पाया। बच्चा डकररहा था।

बहुत खोजा कनकको बन्नूने, मगर उसका कहीं पता न चला। किसीने उसे कहीं जाते न देखा था और जिन्होंने देखा था उनपर मालिकका रोब गालिब था, उन्हे जान प्यारी थी। उन्होंने उसे बताया नहीं। उल्टे सलाह दी—"जवानी और जाँगर दोनों हैं तेरे पास, बन्नू, तू दूसरी ला।"

पर टूटगया था बन्नू। कनकका प्यार उसके रोम-रोममें रमगया था। दूसरी न लाया वह। बिसूरता रहा वह। और बिसूरती रही उसकी कनक भी, जहाँ थी वहाँ।

कनक टूटगई पर वह मालिकसे हिली नहीं। गालियोंकी बौछारसे वह उसका स्वागत करती और पास आनेपर वह घूसोंसे उसका हाल पूछनेके उपक्रम करती। और एक दिन अवसर पाकर उस जङ्गलके बीचवाली कोठीकी ऊँची खिडकीसे पीछेके तालाबमे कूदपड़ी।

बन्नूने यह खबर सुनी। गाँव-जवारने सुनी। सिपाही-थानेदारने सुनी। दारोगाने अपनी डायरीमें भरा—"बन्नू अहीरकी रखेलिन कनक घरसे भागनिकली और जङ्गलके तालाबमे कूदकर उसने खुदकुशी करली।"

× × ×

बन्नू रो-गाकर चुप होरहा। उसका बच्चा, कनककी धरोहर, उसके पास था। उस अकुरको वह सीचनेलगा। उसने सोचा उसे सींचकर वह खुद भी हरा होजायगा। पर न होसका वह हरा। कनककी यादमे वह घुलने लगा। उसकी अलमस्ती मरगई, उसकी जवानी बुढागई, उसके बिरहा-माच सब उसे छोडचले।

कनकने उन्हे ठुकरादिया—यह ताल्लुकदार साहब बरदाश्त न

करसके। पर कनक तो अब थी नही, अपने अपमानका वह बदला किससे लेते ? बस, बन्नूपर उनका सारा क्रोध उमड़पड़ा। क्यों नही उसने कनक को समझा-बुझाकर राजी किया? उल्टे-सीधे ऐसे विचार मालिकको बेकल करनेलगे। और वे बन्नूको वक्त-बेवक्त मारने-पीटने लगे, कभी किसी बात पर खीझकर, कभी किसी बातपर।

और बन्नू उनकी ओर पीठ किए प्रहारोकी प्रतीक्षामे चुपचाप खडा रहता। उन्हे वह स्वीकार करता और बिना उफ किए बाहर चला जाता। आज भी वह चला ही गया। यद्यपि आज वह चुपचाप नही गया, बुग्ज लिए गया। प्यालोकेलिए बच्चेपर मार वह बर्दाश्त न कर सकता था। फिर ऐसी मार जिसने उसे तोड़दिया दुनियासे उठादिया।

उसका बचा धरोहर था उसकी प्यारी कनकका। और वह जीता था कनकके प्यारकी याद और उसकी धरोहरके सहारे। अब वह सहारा भी न रहा। बन्नूका कलेजा टूक-टूक होगया। पर वह मरा नही। उसे जीना था कनक और उसकी धरोहरकी क़ीमतकेलिए। उसने अपना कर्तव्य स्थिर करलिया।

अकाल-वृद्ध होचला बन्नू। लोग उसकी हालतपर तरस खाने लगे। पर लोगोंके तरस और सहानुभूतिसे उसे सख्त चिढ थी। दशा यहाँ तक पहुँची कि वह लोगोंकी हमदर्दीके कारण उनसे रुष्ट होने और उलझने लगा। बात-बात पर वह उनको गालियाँ देने और मुँह चिढाने लगा। इसका एक परिणाम यह हुआ कि वह बालकोंके मनोरञ्जनकी सामग्री होचला। वे उसे चिढाने लगे। उसपर पत्थर फेंकने लगे। ताल्लुक़दार साहबको भी उसके इस आचरणसे कुछ तफरीह होनेलगी। बच्चोंको वे बन्नूको चीखनेकेलिए बढावा देते। बन्नू यह जानता था और यह उसकी क्रोधाग्निमे ईंधनका काम करता था। उसकी चेष्टा दिन-दिन परुष होने लगी, दिन-दिन भीषण।

× ×

सन् तीस-इकतीसका जमाना था। कॉंग्रेसने लगान-सत्याग्रह शुरू करर‍क्खा था। अवधमें धर-पकड़का बाजार गर्म था। झुण्डके झुण्ड लोग भेड़-बकरियोंकी तरह हॉककर लेजाए जानेलगे। सर मैलकम हेलीके शासनमें गुञ्जायश न थी। जमीन कठोरतामें जब्त होनेलगी। किसानोंके हल-बैल, गाय-भैंसें धड़ाधड़ बेमोल नीलाम होनेलगी। ताल्लुकदार साहबके ताल्लुकमें भी पहले तो सत्याग्रहकी चहल-पहल रही मगर दारोगा की मदद और अपने जुल्मसे उन्होंने उसका दमन करदिया। जेल जाने को लोग तैयार थे, शायद सीनेपर गोली झेलनेकेलिए भी अनेक सत्याग्रही प्रस्तुत थे, पर देखते-देखते ही उनकी जमीन नीलाम होजाय, उनके मवेशी छिनजाएँ, उनके बच्चे दाने-दानेको मोहताज होजाएँ—यह उन्हें गवारा न होसका। फल यह हुआ कि सत्याग्रहकी रीढ़ टूटगई। नौकरशाही खुशीसे फूली न समाई।

सत्याग्रहके जो कई प्रकारके उपक्रम होते, उन्हें बन्नू देखता और हँस देता। सत्याग्रही जब पीटेजाते वह कुछ झुँझलाता पर चुपचाप देखता रहता। उनकी बेबसीकी नीतिपर वह कुछ झल्ला भी उठता। पर रहता वह दूर-दूर। उसका तरीक़ा और था, उसकी टेवें और थीं।

× × ×

सत्याग्रह गुजरगया। होली आई। सत्याग्रहियोंने उस भागमें शोक मनाया। बिना स्वतन्त्र हुए उनकी होली कैसी। गुलामोंकी भी कहीं होली होती है—उन्होंने कहा। वे चुप बैठेरहे।

पर जनता नीतिके पेचोंपर नहीं जीती। उसे चाहिए उसकी होली, उसका दशहरा।

ताल्लुकदार साहबके इलाकोंमें विशेष प्रकारसे होली मनाई जाने लगी। उनका ताल्लुक़ा उन चन्द इलाकोंमेंसे था जिसे सत्याग्रहके अनुकूल कॉंग्रेसने चुना था। क्योंकि जुल्म उस इलाकेमें एक साधारण-सी बात थी।

और सत्याग्रह एक ऐसा सिद्धान्त है जिसके प्रयोगके बाद एक पक्षकी हार अवश्य होती है। यदि सत्याग्रहकी हार हुई तो जुल्मोंकी बाढ आजाती है, कुछ किए नहीं बनता। ठीक यही हालत तब हुई। ताल्लुकदार साहबने जी खोलकर जुल्म किया। उन्हे भला कैसे बर्दाश्त होसकता था कि जो कभी उनकी छायासे भागते थे वेही उनके सामने ताल ठोके, बराबरीका दावा करे। इसलिए जब लगान-सत्याग्रह असफल होगया तब उन्होंने मनमानी शुरूकी। और उस मनमानीके शिकार हुए सत्याग्रहियोंके सम्बन्धी, उनके दोस्त।

अब होली थी। जो काम जितना ही कठिन होता है उतनी ही खुशी उसके सर होनेके बाद मनाई जाती है। सत्याग्रहके बाद यह पहली होली आई थी और ताल्लुकदार साहब उसे जी खोलकर मनाना चाहते थे। उनके इस काममें उनकी रियायाने भी खूब हाथ बढाया, उसी रियायाने जिसके अधिकारों और सुखकेलिए सत्याग्रही अबभी जेलोंमें पडे सड़रहे थे।

जनता अकृतज्ञ होती है। उसका न कोई प्यारा है, न वह किसीका ऋण मानती है। घोर वर्तमान उसकी नजरोंके सामने रहता है। ताल्लुकदार साहबके उत्सवमें भी लोगोंने जी खोल हाथ बटाया। रियासतमें नाच-रङ्गके साज जोडे जानेलगे। जनताके पसीनेकी कमाई पानीकी तरह बहनेलगी। फिरभी उसने चूँ न किया क्योंकि बात उसकी आँखोंसे ओझल थी।

धीरे-धीरे होली आई। बेकार-आवारे दिनों पहले गुलालसे राह-चलतोंको रँगने लगे। स्त्रियोंका बाहर निकलना कठिन होगया। बूढोंने भी युवकोंका बाना पहना, झाल-डफ ले फाग तथा भङ्गके नशेमें नाचने लगे।

होली आई। पिछली रातसे ही शोर-चिल्लाहटसे गढ गूँजउठा था। कितनीही सनियो ताल्लुकदार साहब और दारोगाकी भेट हुई। सुबहही दोनों आकर महलकी निचली छतपर खडे होगए और क्या मजाल जो कोई मर्द या औरत उनके और उनके नौकरोंकी पहुँचसे बिना-रङ्गे निकलजाय।

× × ×

बन्नू सुबह जो बाहर निकला, लोगोंने उसे रोजकी भाँति विमन न देखा। उन्हीके बीच वह भी आ खडा हुआ। नई धोती, धुला कुर्ता उसने पहिना था। लोगोंने उसे रँगदिया। जो उसे जानते थे उन्हे उसके स्वभावपर कुछ अचरज हुआ। आज रौनक थी उसके चेहरेपर। गालोंपर कुछ सुर्खी नाचरही थी जो महीनोसे लोगोंने न देखी थी। झाल लिए लोगोंकी रागमें राग मिलाए वह भी किलकारता रहा।

सन्ध्या हुई। महल मशालोंसे चमकउठा। नाच-रङ्ग शुरूहुआ। तबले धमकने लगे, सारङ्गी काँपने लगी, घूँघरू झक्कृत होनेलगे। महलका कोना-कोना गूँजउठा।

तीसरे पहरतक नाच-रङ्ग चलता रहा। करीब तीन बजे महलकी सबसे ऊपरी बैठक खाली हुई। केवल राजासाहब, दारोगासाहब और बाई साहिबा रहगई। शराबकी दौर चलने लगी।

दिनभरकी थकी-माँदी जनता घरोंमे जा सोई।

× × ×

सहसा दिनकी भाँति उजाला होगया। कस्बा चमक उठा। लोग बाहर निकले। देखा महल धाँय-धाँय जलरहा है। लपटें आसमान चूमरही हैं। राजासाहब और उनके दोस्त चीख-चिल्लारहे हैं। नीचे जानेकी उन्होंने कोशिशकी पर जीनेका दरवाजा बन्द मिला। एकबार बाहर छज्जेपर आकर कूदनेकी सोची, हिम्मत न पड़ी। भीतर लौटगए चिल्लाते, चीखते।

लोगोंकी भीड जमा थी। सब तमाशा देखरहे थे। पिछले दिनकी होली ठडी होरही थी, इस रातकी गरम। एक कोनेमे लाठीपर बगलका भार डाले बन्नू अङ्ग-अङ्गसे प्रसन्न खड़ा था और देखता था वह उन लपटोंके पीछे अपनी कनककी गोदमे उचकते प्यारे बच्चेको।

उलट - फेर

बनारसके नन्हूमलकी गिनती लखपतियोंमे थी। कई तरहके रोज-गार उनके हाथमे थे और हरएकसे उनकी गद्दीपर दौलत बरसती थी।

विशेशरगञ्जमें उनका गल्लेका गोला था, लेन-देनकी आढत थी; कचौडी-गलीमे चॉदीके कारबारकी कोठी थी, और रेशम-कटरेंमे रेशमी सूतकी थोक-फरोशीकेलिए गहरा गोदाम था। गरज यह कि जिस रोजगारमे नन्हूमलने हाथ लगाया वह चमक उठा।

लोगोका कहना था कि रोजगारकी आमदनीके अलावा उनके पास जवाहरातकी भी एक बड़ी रकम थी जो उन्होने कहीं दबा रखी थी।

नन्हूमलके एकही लड़का था धन्नूमल। किस्मतकी कुछ ऐसी खूबी कि जिस कुलमे नन्हूमलका जन्म हुआ था उसमे कई पुश्तोंसे एक-एकही सन्तान होतीआई थी। उनके पिता भी अकेले थे, खुद उनके कोई भाई न था, और लडका भी उनका अकेला था। इससे एक बात सही बनीरही कि उनकी पुश्तैनी जायदाद पीढी-दर-पीढ़ी ठोस उतरती रही : उसका बटवारा नहीं हुआ।

तीस सालकी उम्रमे धन्नूमलके एक बेटा हुआ। उनके पिता जो अक्सर वंश डूबजानेके डरसे अधमरेसे बनेरहते थे हरे होगए। जी खोलकर उन्होने धन लुटाया; गरीबोको बेशुमार दान दिया, पनसरे बैठाए और दूसरे पुण्यके काम किए।

पर उनके भागमे बहुत दिनोतक पारिवारिक सुख नहीं बदा था : सालभरके भीतर ही वे ससारसे चलबसे।

मरनेके पहले बीमारीकी हालतमे बेटेको बुलाकर उन्होने उसे एक चन्दनका डब्बा दिया और कहा—

"बेटा, इसे जानकी तरह बचाकर रखना। फिर जैसे इसे मैंने तुम्हे दिया है वैसेही तुम इसे मेरे पोतेको देना। यह कई पीढ़ियोकी थाती है।"

× × ×

धन्नूमलने पिताका काम सम्हालना शुरू किया। समझदार लगन के आदमी थे और मेहनतसे जी नही चुराते थे। पर लक्ष्मी उनपर प्रसन्न न जान पड़ी। दिन-दिन-भर वे आढ़तोंमे बैठेरहते मगर उनके रोजगार बिगड़ने लगे, बिगड़ते गए। उनके पिताके कुछ ऐसे भाग थे कि वे लोहा छूदे तो सोना होजाय और धन्नूमलके ऐसे फिरे कि वे सोना छूदे तो मट्टी होजाय।

इधर उनका खर्च भी काफी था। जी खोलकर खरचते थे। उनका पुत्र भानू अब तीन सालका होचला था। उसकी माँ कबकी शान्त होचुकी थी, इससे धन्नूमल ही उसे माँका प्यार भी देते थे। लोगोंने कहा—बचा अब बढ़चला है, उसका कर्ण-छेद होजाना चाहिए वरना कान कड़े होजाने पर छेदनेसे तकलीफ होगी।

सुनार आया और उसने सोनेके तारसे भानूके कान छेदे। उनमें मोतियोके बाले पहनाए। धन्नूमलने जी खोलकर धन लुटाया। सुनार जब इनाम पानेकेलिए हाथ बाँधे सामने आखड़ा हुआ तो उन्होंने उसे बेटेकी कान-छिदाईमे १५ बटे ३ नम्बरका अपना बिशेशरगञ्जका एक बड़ा मकान ही देदिया। उनके मकानोकी संख्या अनगिनत थी।

× × ×

पर उनके रोजगारकी हालत बिगडती ही गई। एक कोठी आज बन्द होती, दूसरी कल। एक रोजगारसे रुपए निकाल दूसरेमे लगाते पर बुझते चिरागकी भाँति जरा चमककर वह भी ठप्प होजाता। मकान रहन होगए, बिक चले।

घबराकर धन्नूमल सट्टा खेलनेलगे। सट्टा या तो मालामालही करदेत है या दरिद्रही करदेता है। जुएकी धुन होती भी अजीब है। जुआरी जितनाही हारता है उसकी जीतकी हविस उतनीही बढ़ती जाती है। दाँवपर वह अपना सर्वस्व लगादेता है। धन्नूमलने भी अपना बचा-खुचा सर्वस्व सट्टेमे स्वाहा करदिया।

धीरे-धीरे वे घुलचले। खुले हाथ बँधगए। दोस्त-अहबाब एक-एक कर उन्हे छोडचले। रह-रहकर धन्नूमल बीमार पडनेलगे। प्रमेह उनकी देहमे कबका घर किएहुए था, अब दिकने भी पकड़ा। और हालत दिन दिन बिगड़ने लगी। नादान बच्चा अभी चार सालका भी न था। उसके लिए उनके प्राण और सूखनेलगे। कोई सगा-सम्बन्धी भी न था जो उसे सम्हालता। नौकर-चाकर सब उन्हे कबके छोडचुके थे।

रईस-रिश्तेदार कबके उनसे नाता तोड़चुके थे। अब उन्हे गरीब नातेदारोंकी याद आई। उनकी सासकी दूरके रिश्तेकी एक चचेरी बहन थी। कभी उसकी सुसराल भरी - पुरी थी और पटनेके इने-गिने रईसोंमे उसके ससुरके पिताकी गिनती थी। पर वह भी आज कंगाल थी और उसी शहरमें जहाँ उसके बड़ोंने कभी जवाहरात फूँके थे वह भाड़ फूँकती और चबेना बेचती थी।

धन्नूमलने उसे बुलाकर भानूको सौंपदिया और साथही उसे चन्दनका वह डब्बा भी देदिया। डब्बा देतेहुए उन्होंने उसे समझादिया कि भानूके बीस सालके होनेपर वह उसे देदे। और अगर पहले उसकी कजा आजाय

तो भानूको समझादे कि वह उस डब्बेको बीस साल पूरा होनेके पहले न खोले ।

धन्नूमलका मानिक जब टूटगया तब उनकी नातेदार सास भानूको पटने लेगई ।

× × ×

बिशेशरगञ्जके सेठ करोड़ी पहले सुनार थे अब शर्राफ। सोने-चाँदीका उनका रोजगार दिन-दूना रात-चौगुना बढतागया । सेठ करोड़ी सचमुच करोड़पती होगए । बारह बरसके पहले वे क्या थे और बारह बरस बाद वे क्या होगए !

किस्मत भी शायद आदमीही की तरह पाँसा फेंकती है। उसका कोई दोस्त या दुलारा नही। पाँसा आँख मीचकर फेंकती है, खोलकर उठालेती है। इसबीच दुनिया बदलजाती है : राजा रङ्क होजाता है, करोड़पति भिखमंगा।

सेठ करोड़ी उसी अन्धी किस्मतके सीधे पासोंमे पड़े थे, चमक उठे, धन-जन दोनोंसे। इधर एक खासबात हुई। जिस मकानमें वे रहते थे उसमें, लोगोका कहना था, बडी दौलत गड़ी थी। वह भागसे उनके हाथ लगगई। सोनेमें सुहागा पड़ा और धन धरनेकी उन्हे जगहकी कमी होनेलगी। मुनीमोंकी कतार लम्बी बहियोको खोलने बन्दकरने लगी। सामने चाँदीके दलालोंका गरोह मँडराने लगा और टेलीफूनकी घन्टी रात-दिन कानोंको बहरी करने लगी।

× × ×

जब पटनेमें भानूकी रिश्तेकी नानी मरी, वह सत्रह सालका होचुका था। छरहरे बदनका वह अब सुन्दर जवान था। पर इस उमरतक उसने किया कुछ न था । रिश्तेकी नानीने जरूर कुछ साल पहले उसे पाठपर बैठा

दिया था जिससे उसने मामूली हिसाब - किताब करना और धनुआ पहुँचा सीखलिया था।

पर उसे पढना-लिखना अच्छा लगता नहीं था इसलिए वह नानी के काममेंही हाथ बटानेलगा। शहरसे बाहर चलाजाता, पत्ते टहनियाँ बटोर-बुहारलाता फिर भाड़ जलाने और चने - चबेने भूननेमें वझ जाता।

इसी तरह बरसों कटगए। उसने कभी न जाना कि उसके पिताका कुल कभी लखपती था।

बुढिया नानी जब मरने लगी, उसने भानूको बुलाकर एक चन्दनका डिब्बा देतेहुए कहा—

"भानू, तुम भड़भूजेकी औलाद नही, लखपतीकी हो। काशीमें कभी तुम्हारे बाप-दादोंका बडा रोजगार था। खैर, उसे जाने दो। आज तुम्हें मैं अकेला छोडे जारही हूँ। यह एक चन्दनका डब्बा है जिसे तुम्हारे पिताने तुम्हारे साथ मुझे सौंपा था और कहा था कि मैं इसे तुम्हे बीस बरसकी उमरमें दूँ। भगवानको यह मजूर नहीं है। इसलिए मैं तो चली। तुम्हे यह डिब्बा दिए जारही हूँ, तुम इसे तीन बरस बाद खोलना। जब बीस सालके होजाओ।"

× × ×

भानूको अपने कुलका गर्व न था। कुलको उसने जानाही न था। गुरबतमें पला था, मेहनतकश मजदूर बनना उसे अच्छा लगा। भाड़ उसके व्यवसायका सहारा था, नानी प्यारका। दोनों टूटगए।

पटना अच्छा न लगा। भानू बनारस आया। उसे सूझी कोई रोजगार करनेकी। नानीके मरनेपर उसे चालीस रुपये मिले थे। कुछ बनारस आनेमें खर्च होगए थे। शेष उसकी पूँजी थी। उतनेमें रोजगार कौनसा होसकता था? पटनेमें नानीकी दूकानके सामने एक चायकी दूकान थी जो

खूब चलती थी। उसेभी चायकी दूकान करनेकी इच्छा हुई। दूकान उसने खोलही ली।

बिशेशरगजमें सेठ करोड़ीकी जो बड़ी कोठी थी उसमे बाहरकी ओर बहुतसे कमरे किरायेपर उठते थे। उन्हींमेंसे एक लेकर भानू अपनी दूकान चलाने लगा। उसे लखपनी बननेकी लालसा थी नही, पेट पालना था। सुबह-शाम चाय बनाता, लोगोंको पिलाता। दोपहरमे गायघाटपर जापहुँचता साबुनसे कपडे छाँटता, नहाता-धोता, बगलेके पॉख-से धोती-कुरते चमकाता दूकानपर लौटआता। यही उसकी दिनचर्या थी, न कोई कमजोरी थी न हविस। उसके पेट-भरकेलिए उसकी दूकान कामधेनु थी। वह सुखी था, प्रसन्न, संतुष्ट।

× × ×

आज उसकी आयुका बीसवॉ बरस समाप्त होरहा था। उसने दूकान न खोली। सुबहही उठकर वह गायघाट गया। गंगास्नान किया, तिलक लगाया, नए कपड़े पहने। अन्नपूर्णा और विश्वनाथके दर्शनकर वह घर लौटा। फिर बडी निष्ठासे धूप-नैवेद जलाकर उसने साधसे अपने बाप-दादोंका दिया वह चन्दनका डब्बा खोला।

उसमे एक कागज मिला जिसपर लिखा था—

"तुम इस कुलके एकमात्र उत्तराधिकारीहो। बिशेशरगञ्जके पन्द्रह बटे तीन नम्बरवाले हमारे मकानमे चौकके पूर्वी कोनेसे तीन हाथ पच्छिम खोदो। सात पीढियोंसे बचाए जवाहरात वहाँ गडे हैं, उन्हे भोगो।"

पहले तो भानू स्तब्ध रहगया। फिर मुस्करातेहुए उसने धीरे-धीरे अपने हाथका कागज मसलडाला। सेठ करोड़ीके उस मकानका नम्बर जिसमें वह दूकान करता था पन्द्रह बटे तीन था।

———

लाशपर

उसकी लेखनी चलरही थी।

श्रमिक था वह, बुद्धिजीवी। उसकी लेखनीका ही सहारा था उसे, उसीका आसरा। इससे वह अक्सर चलती रहती—सुबहकी गोधूलिमे, शाम के झुटपुटेमें। अभी अभी अधिकारोकी रक्षाकेलिए उसने सरकारी नौकरी छोडदी थी। अब वह श्रमिक था, केवल श्रमिक। और जीता था वह अपनी कुदाल यानी लेखनीकी छायामे।

उसकी एक सखी थी, उदात्त सहचरी, जिसे दुनियाने उसकी पत्नी जाना। थी वह उसकी 'गृहिणी सचिवः सखी मिथः प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ।'† शैशवके बाद जब कौमार्य थककर सोया, अलसाए यौवनने तब उसे उचक-उचककर झाँका। तभी श्रमिकने सर्वस्व देकर उसके हाथ पकड़े।

वह साहसकी मूर्ति थी, श्रमिककी थकी देहमे प्राण फूँकनेवाली। ऊँची, सुघड, सुन्दरी, उस एकान्त सखीकी कमनीय कायामे घुन लगगया। क्षयने उसे धीरे-धीरे सुखाडाला। कपूरकी डली-सा उसका गोरा रङ्ग ज्वरके तापसे उडगया। पर अभी उसे जीना था। विशेषज्ञोंने एक फेफड़ा बेकार कर शेष दूसरेपर ही उसे जीवित रखा।

एक-एककर नौ वर्ष बीतगए। दिन खुशीके थे, जल्दी कटते हैं। देर न लगी, एक-एककर उड़गए। समयके प्रवाह और सखाके प्यारने

---

† गृहकार्योंमें मंत्रिणी, एकान्तकी सखी और ललित-कलाओंमें प्रियशिष्या—कालीदास

फिर साधका अल्हड़पन भरा। और मौजका मारा उसका वह सखा एक दिन ऐसा-कुछ करबैठा डाक्टरोंने जिसे बार-बार मनाकिया था।

औलादकी सुघराई उसे न भाई। उसका सञ्चित विलास लुटचला। हिम-श्वेत प्रियाका रङ्ग फिर धूमिल होचला। देखते-देखतेही उसकी सखी अधसिंचे अकुरकी भाँति सूखचली।

श्रमिकने भविष्यके अन्तरमे झाँककर देखलिया, अपना एकाकी ससार। और आँसूभरी आँखोंको पोछ उसने लेखनी उठाली। फिर धुँआधार चलनेलगी उसकी वह पैनी लेखनी।

वयोवृद्ध एक धनी मित्रने कहा—"इन्हे फल खिलाओ।"

श्रमिकको याद आई पिछली निराहार सन्ध्या और सूझी अगली भूक बिसूरती सुबह। न रोगिणीकेलिए आहार था न उनके चार बच्चोंकेलिए। उसके जीमे आया, महानुभावके मुँहपर वह थूकदे। व्यगकी हँसीसे उसका मुख विवर्ण होगया। वह अपनी कुदाल चलानेलगा। महानुभावके बैंक बैलेन्स उसके उदर नही भरसकते थे। उन्होंने जो श्रमिकका वह रुख देखा, तड़पे पर सहमे-सहमे मनमे बोले—मेहनतकशका यह गुरूर!

मेहनतकशके जीमे हुआ, उठकर उनके दो हाथ झाड़दे। मगर था वह बातोंका आदी। बरदाश्त उसकी खुराक थी। वह चुप होरहा, उसने लेखनी रखदी। बाहर जाते महानुभावकी चौडी-भरी पीठ उसने क्षण-भर देखी, फिर वह धीरे-धीरे अपने आपसे बोला—इन्हे फल खिलाओ!

घृणा और विद्रोहसे उसकी चेष्टा विकृत होगई थी।

नागकी फुफकार-सी एक लम्बी साँस छोड़ वह फिर बोला—अच्छा, एक दिन देखूँगा।

और अपनी काली-थकी लेखनी उसने फिर उठाली। सर वॉल्टर स्कॉट और एडगर वालेस उसके सामने थे कर्ज और लेखन-स्फूर्तिके नाते!

मैक्सिम-गोर्की और टॉमस मान विप्लव और मानवताके अधिकारोंके नाते !!
नीचे पडे कागजोंपर उसकी लेखनी-फिरने लगी। उसकी फौलादी नोक शक्ति और अनाचारसे टकराने लगी—अवधके ताल्लुकदारोंकी अपनाई कैसरबागकी नवाबी केसरिया दीवारोंसे घिरी-घरी।

× × ×

"एक्स-रे लिया है ?" डाक्टर हरगोविन्द सहायने पूछा।

"जी, अभी तो नही।" श्रमिक बोला, थका, टूटा, आकुल।

"तो एक लेलीजिए।"

"फेफडेका क्या हाल है, डाक्टरसाहब ?" रोगिणीने एकबार पूछा।

"पहले दाँया खराब था, अब बाँया है।" डाक्टर बोले। "पर ठीक हाल एक्स-रे फोटो देखकर ही बता सकूँगा।"

रोगिणीने कहा—"हूँ !" और करवट बदल वह पड़रही।

बाहर निकलकर डॉक्टर हरगोविन्द सहाय श्रमिकके मित्र डॉक्टर गुप्तासे बोले— "पेशेन्ट सब जानती है, उससे कुछ छिपाना कठिन और बेकार दोनो है।"

फिर उन्होंने होठ बिचका दिये।

"कुछ उम्मीद करूँ, डॉक्टर साहब ?" श्रमिकने पूछा जला-जला।

"उम्मीद सम्भावनाके खिलाफ है। बाँया फेफड़ा चलनी होगया है और दिल खिंचकर दाहिनी ओर चलाआया है।" डॉक्टरने फीस जेबमें धरते-धरते कहा।

रोगिणीको वक्त-बे-वक्त जो धड़कन होनेलगती थी उसका कारण श्रमिकने आज समझा—दिल बाँईसे दाहिनी ओरको आगया है।

डॉक्टरकी गाड़ी धूल उड़ाती चलीगई। मुँह खोले, अवाक् श्रमिक धूल फाँकता सामने देखतारहा।

× × ×

थका-माँदा श्रमिक बावला-सा बैठा था। पासही खडे थे उसके गरीब सबके-काम-आनेवाले दोस्त—कामेश्वरनाथ।

"अब ?" श्रमिकने अन्तरके चिन्तन-क्रमको कायम रखतेहुए पूछा। उसने समझा—उसका दुख-सुख जैसे जन-जनका है। जन-जन उसे जानता है।

जन-जन उसे नहीं जानता, सच। पर गरीबकी उलझन, उसकी कराह गरीब पहचानता है। कामेश्वरनाथ श्रमिकके अन्दरूनी सिलसिलेको जानते थे। उसकी लाचारियोंपर वे अफसोस करते थे, कमजोरियोंपर लानत फेंकते थे।

"अब क्या ?" उन्होंने सहमे सहमे पूछा, कुछ जाननेकेलिए नही, जवाब सोचनेको वक्तकेलिए।

"पूछता हूँ—अब ?" उसकी ज्योतिहीन आँखे पूरी खुली थी, मित्रकी आँखोंको छायेहुए। पर थी वे अर्थहीन, अन्धी।

कामेश्वरनाथ क्या उत्तर देते ? दम घुटा जारहा था, घुटने जवाब देरहे थे, दिल डूबा जारहा था। पर आदमी वे कुछ उस तरहके हैं जो गिरह कटाकर कहते हैं—तोड़ा पास है। अपनी बीबी-बच्चोंका पेट काटकर स्वयं उन्होंने पाई है बड़ोंकी बधाई, और बटोरा है स्वप्निल पुण्य। त्यागका उचित दण्ड पाकरभी वे कर्ण और हरिश्चन्द्रका ध्यान करते हैं।

झट वे बोले—"अब क्या ? अब लेजाओ इन्हे पटने। इन्हे विश्वास है डाक्टर बैनर्जी अच्छा करदेगें। फिर तुम्हे यह सरकारी बँगला भी तो छोड़ना पडेगा—इसकी भी तुम्हें फिकर है ?"

"ऐं! हाँ, बगँला भी तो छोड़ना पड़ेगा।" ऊँघता-सा श्रमिक बोला। उसने शायद इस पहलूपर कभी विचार न किया था।

× × ×

लेखकने अपना दफ्तर समेटा। उसके अन्तरमे आग सुलगरही थी।

रोगिणीको लिए-लिए वह पटने पहुँचा जहाँके डॉक्टर टी. एन. बैनर्जीने उसे कभी स्वस्थ किया था।

होठ उन्होंने भी बिचका दिया। पर दवा होनेलगी। डॉक्टर हुई बचाहुआ फेफड़ा भी गैससे बेकार करनेलगे।

उम्मीद बँधनेलगी। सुबहकी खाँसीकी मारी रोगिणी शामके सेहतका भरोसा करती और शामके बुखारसे झुलसी वह सूरजकी नई किरणोंकी राह देखती।

और श्रमिक?

वह बेसुध था, आफतका मारा उसके पास इतना भी समय न था कि अपनी जीवन-सहचरीके पास वह क्षण-भर बैठता। डॉक्टरोंको हर महीने पाँच-सौ रुपए देने होते, हर तीसरे दिनके औसतसे। मन मसोसे वह लोहेकी लेखनी घिसाकरता—सुबहसे शामतक, शामसे सुबहतक।

और रोगिणी?

दिक्से घुलतीजाती थी वह। जीनेकी साध सबको होती है, उसे भी थी। जब फायदा न होता हल्केसे कहती—"फायदा नही होता।"

फिर उसे श्रमिकके कलेजेपर वज्रकी चोट जान चुप हो रहती, बरबस मुस्कादेती। श्रमिकका अन्तर जलने लगता। रोगिणी अन्तर्मुखी होजाती।

× × ×

श्रमिककी मांग आती— आज यहाँ, कल वहाँसे। चिट्ठियाँ वह पढ़ता, फिर डालदेता। अक्सर उनका उत्तरतक वह न देता। उसका सोने का संसार मिटा जारहा था, कागजकी रद्दी संपत्ति बटोरने कौन जाता।

शक्तिभर वह क़लम घिसा करता। उसे कुनबेका पेट भरना था,

डाक्टरोंके बैंक-रजिस्टरकी अदद मोटी करनी थी। सूख चला वह मजदूर। पर उसके पञ्जरमें अभी दम था, पेशानीपर बल थे, आँखोंमें लपटें थीं।

जलगया था वह। सुन्दर कपड़े पहने आदमियोंको देख उसे आग लगजाती। पाससे गुजरती श्रीमानोंकी मोटरोंके पीछे उठती धूलपर वह थूकदेता। फिर कुछ ऐसे कुवाच्य कहता जिसे सुनकर खुद उसे कभी शरम लगती।

जी चाहता—भेड़िए-सा वह खूँखार होजाय और कुछ खास तरहके लोगोंके खूनमें वह हल चले। जब उसके सूधे मित्र भगवानपर भरोसा करने की उसे सलाह देते, वह चुप होजाता पर निरालेमें जाकर उस पुराने झूठको वह हजार गालियाँ सुनाता।

कभी-कभी वह सोचता— अगर बुजदिलीकी वजहसे खुदापरस्त बनकर उसके सामने कभी घुटने टेकनेकी नौबत आई तो जरूर उसके पहले ईंट-पत्थरोंसे इन्हें तोड़दूँगा। उस फरेबको कतई नजरोंमें उठने न दूँगा जिसकी आड़से गुनहगार-उचक्के अपनी मसनदकी ऊँचाईसे ग़रीबोंपर रहमतकी निगाह डालते हैं!

× × ×

इसी बीच कांग्रेसके भूतपूर्व नेता और गुजराती साहित्यके प्रमुख स्तम्भ श्री मुंशीने तार दिया—"कानपुर आकर मिलजाओ।"

झल्ला उठा।

मरीजाकी हालत बुरी थी। मुँहसे लहू जारी था। जमानेकी मार का अभ्यस्त श्रमिक लहूके घूँट पीरहा था। रोग मरीजको खारहा था, रोगिणी मर्जके खूनी मंजिल तै कररही थी।

श्रमिककी लेखनी खिझी-जली चलरही थी। रोगिणी उसकी नजरसे ओझल थी पर रोगके बुनियादी कारण उसकी लेखनीकी पैनी नोकके नीचे

थे। उनपर वह आग बरसारहा था। श्री मुन्शीका तार उसी नोकमे छिदगया।

रोगिणीके पास वह आबैठा।

"बात क्या है ?"—रोगिणीका धीमा स्वर सुनपड़ा।

"कुछ नही।"

"चेहरेपर बादल क्यो उमडरहे हैं ?"

"खामखाह, बिलावजह।"

"खामखाह क्या होगया ? बिलावजह आग किसने उद्कार दी ?"

"नाहक छेडते हैं मुझे ये। अगर इन्हे कुछ करना होता तो तुम्हारी यह हालत होती, और मेरी यह दुर्गति ?" तवेपर जैसे पानीका पहला बूँद पड़ा। छन्-न्-न्-सा हुआ। फिर पानीकी बाढने उसे ठण्डा करदिया।

बाँध टूटगया था, आँसू छलछला आए थे। और रोगिणीने उन्हे देखलिया था।

हँसी और रुलाई सक्रामक होते हे, पलभरमे फैलजाते हैं। रोगिणी की नाजुक हालतमे रोना बुरा था पर अनायास फूटे फफोले कही उचित-अनुचितकी परवाह करते हे ! रोगिणी बिसूरने लगी।

श्रमिकके आँसू रोगिणीने देखलिये थे। इसकी चोट उसे गहरी लगी। मर्दकी पीठ जमीनसे लगगई थी। उठकर वह बाहर चलागया। तारके उसने टूक-टूक करदिए।

उसने सोचा, रोना कायरता ही नहीं अमारतभी है। गरीब मजूरके पास इसकेलिए समय कहाँ ? और बचीहुई सख्तीको क़लमकी फौलादी नोकसे कुचलकर उसने पानी-पानी करदिया।

भूख, नफरत, गुस्सा—ये तीन पाए थे उस श्रमिकके, जिनपर वह अपने सूखे शरीरका बोझ डालता था।

× × ×

श्री मुन्शीका पत्र फिर आया। इधर मरीजको कुछ फुरसत-सी जानपड़ी। उसने खतकी बात जब सुनी तब श्रमिकको बुलाया।

कहा—"मुशीजीने इतिहास लिखनेके सम्बन्धमे बुलाया है न, जाना चाहिए।"

"क्या फायदा? वह तो अखण्ड हिन्दुस्तानकी-सी कोई चीज लिखवाएँगे। भारतकी एक-राष्ट्रीयतापर जोर देंगे। मुझे ऐसा लिखना सही नहीं जानपड़ता।" श्रमिक बोला।

पर रोगिणीने उसे राजी करलिया।

कहा उसने—"काम लेना न लेना अपने हाथ है। मिलआना श्रेयस्कर ही होगा। बम्बई पहुँचा वह—ग्वालियर होताहुआ। मुन्शीजीसे बातें हुईं। भारतकी सांस्कृतिक एकताको श्रमिक इतिहासका एक सत्य मानता था। उसके स्कन्ध लिखना उसने स्वीकार करलिया।

इसीबीच विमलाजीका खत पहुँचा। रोगिणीकी दशा फिर बिगड़ने लगी थी। पहली गाड़ीसे पटने भागा।

अवस्था शोचनीय थी। डॉक्टर हईने कहा—"एक्स-रे कराओ।" डॉक्टर बैनर्जी बोले—"हालत नाजुक है। उसे शान्तिसे मरने दो। उसके पञ्जरको बेकार मत घसीटो।" उन्होने मुँह बिचकादिया। श्रमिकका दिल बैठगया।

श्रमिकने सोचा—डॉक्टर हईकी राय चाहे ठीक न हो, पर और करे ही क्या? क्या ठीक, कहीं इसीसे कोई राह निकल आये। तैयारी की। खटोली आयी। पर आस्मानका रङ्ग काला था। मेघ मॅडरारहे थे। उनसे जलके फुहारे छूटरहे थे। जाना न होसका।

इधर मरीजकी हालत बिगड़ती जारही थी। दिलकी धड़कन जारी थी। श्रमिकके मेजबान रामचन्दर बाबू कबके निराश थे, अबतो वे कन्धे

डाल बैठ ही गए। श्रमिकने सोचा—सुस्ता ले, शायद जल्द इन कन्धोंकी जरूरत होगी।

सुइयाँ फिर दो जानेलगी—दिलकी धडकनकेलिए भी, दिककेलिए भी। पड़ोसी डॉक्टर शुकदेव बाबू इजेक्शनपर इजेक्शन देनेलगे।

रात और दिनकी सीमाएँ मिटचुकी थी। श्रमिककी आँखोंमे नीद न थी, काँटे थे जो चुभते थे। और न वह लेखनीको ही विश्राम दे सकता था। जब-तब जरूर वह रोगिणीके बिस्तरके पास आजाता मगर डॉक्टरकी फीस और सुइयोंके दाममे तो उधार नही चलता, या ज्यादासे ज्यादा एक बकाए से दूसरेतक। सो उसकी लेखनी चलतीरहती।

वह जानता था—उसने झेला था—कि प्रकाशकोंकी दयापर ही हिन्दुस्तानी लेखक जीता है। उसे प्रयत्न करनाही होगा उनकी कृपा जीतने के अर्थ और खुद जिन्दा रहनेकेलिए। चाहे उस जिन्दगीका उपयोग कभी आनेवाले कालमें इन्सानियतकी प्रतिशोधात्मक बन्दिशोंकेलिए ही क्यों न हो।

फिर पेट तो रुकता नहीं। शराफत और ईमानदारीकी दलील तो वह मानता नही। सुबह-शाम, दोपहर आधीरात अपने वक्तपर वह अपनी खुराक माँगताही है। गरीब श्रमिकका रोगिणीके पास बैठना भी मुहाल होजाता।

रोगिणीकी दुखिया विधवा माँ पूजाकी निष्ठासे दिन - रातको एक किये निराहार उसकी सेवा करतीरहती। अपनेलिये भी इतनी नही जितनी उस ग़रीबकेलिए दिलमे कचोट-सी होआती। पावसके मेघ-सी उसकी आँखे बराबर झरती रहती। उसे देख श्रमिक भी कन्धे डालदेता। उसकी आँखें भी भीग जाती पर अक्सर उसका रूप अरगनीका-सा होजाता। आँसू आते, टँगते और सूखजाते।

श्रमिकके माता-पिता और चचेरे भाई रोगिणीको जैसे कलेजेमे छापकर

रखनेलगे। गरीबोंके पास था क्या ?—श्रमिककेलिए अविश्वास-भरा ढाढस और रोगिणीकेलिए प्यारभरे आँसू।

× × ×

मंगलवार किसी प्रकार कटगया। बुधवार काटे नहीं कटता था।

शामको श्रीमुन्शीका सान्त्वना-भरा खत आया। पूछा था—क्या हाल है। लिख दिया—आजकी रात कटजाय तो जानें।

न कटसकी वह रात। कालरात्रि थी वह।

दस बजेतक बच्चे जागते रहे। कुछ गुम-सुम होरहा है ऐसा उन्हें जानपड़ा—चित्राको विशेष क्योंकि वह कुछ अधिक तीव्र थी—इससे वे जागते रहे। दस बजे वे सोए।

ग्यारह बजे, फिर बारह।

आकाश विशालकाय काले धब्बोंसे भररहा था। दूरतक फैले खेतोंसे टकरा-टकरा हवा रोरही थी। रहस्यभरी रात साँय-साँय कररही थी। बिल्ली आयी और क्षीण प्रकाशमें अपनी काली छाया छोड़ती चलीगयी।

रोगिणीकी माँने पूछा—"बेटा, कुछ कहोगी ?"

"कुछ नहीं।" उत्तर मिला।

श्रमिककी लेखनी थमगयी। उसने आँखें रोगिणीपर डालीं। वह धीरे-धीरे उठा। उसके पास पहुँचा।

"मेरेलिए कुछ कहोगी, रानी ?" अभागेने पूछा।

"कुछ नहीं।"

"बच्चोंकेलिए ?"

"कुछ नहीं।"

उसका दिल बैठगया। धीरे-धीरे वह भी रुग्णाकी खाटके पास बैठ

गया। एक हाथ उसका अपने दिलपर था, दूसरा पत्नीकी नाड़ी पानेकी चेष्टा कररहा था। पत्नीके हाथ ठण्डे थे बर्फकी तरह, बाहरकी सर्द हवाकी भाँति।

छब्बीसकी रात थी वह। साढ़े बारह बजचुके थे। बाहरका अन्धकार इतना घना था कि सुईसे छिदजाय। मेघ कुछ देर पहलेही उमड़-घुमड़कर अब कसगये थे। दम साधे-से वे गुम-सुम थे। रह-रहकर बिजली चमक जाती थी। हवा सन्-सन् कररही थी। श्रमिककी माँ रो उठी। वेदना-भरा उसका काँपता विलाप अन्धकारको तीर-सा चीर चला।

रोगिणीने उसे धीरे-धीरे समझाया। अपनी माँसे उसने कहा—"जा, माँ, सो रह।"

माँ न टली। न उसकी, न श्रमिककी।

पर श्रमिकको उसने जानेकेलिए मजबूर किया। श्रमिक बिस्तरपर जा पीठ दीवारसे लगाकर बैठरहा।

कई मिनट बीतगये—बोझिल, सदियोंकी लम्बाई लिये।

श्रमिककी माँ मुश्किलसे अपनेको रोकेहुए थी, सहसा फूटपड़ी। श्रमिक उछलकर रोगिणीके पास जापहुँचा।

रोगिणी बोली—"रो मत, माँ, मुझे तकलीफ नहीं होरही है।"

पर अब साँस लेनेमें उसे तकलीफ होनेलगी थी। श्रमिक उसका सिर गोदमें लेकर बैठगया। उसने एकबार श्रमिककी ओर देखा, फिर आँखें बन्द करली। मानिक टूटगया।

दोस्त-अहबाब सिसकरहे थे, बच्चे बिलखरहे थे, माएँ डकररही थीं।

श्रमिक रोता नहीं था, रह-रहकर कराहता था। उसकी आँखें सूख गयी थीं। उनसे आँसू नहीं अङ्गार बरसरहे थे। उसके संघर्षमय जीवनकी रीढ़ थी वह रोगिणी जो टूटगयी थी। कङ्गालका स्वप्न छिनगया था।

धीरे-धीरे उठकर वह बाहर अन्धकारमे जा खड़ाहुआ। धीरे-धीरे उसने कहा—उसे दिकने नहीं ग़रीबीने मारा है। और यह ग़रीबी वर्ग-विशेषकी देन है। इस ख़ूनका बदला उसे चुकाना होगा।

दूर फटे बादलोके बीच जहाँ-तहाँ झिलमिलाते तारोंने उसकी भीषण प्रतिज्ञा सुनी। हवा सहमी-सहमी बहने लगी पर छुरी-सी तीखी। अँधेरी रात ने करवट ली।

प्रातःकाल आकाश निर्मल था। सूरज चमकरहा था। बाहर कुछ खटखट होरही थी। बादमे जाना—वह बढ़ईके बॅसलेकी थी।

× × ×

चार कन्धे लगे। लोग घोर झूठको सच करनेलगे। श्रमिकका कन्धा बझा था। उसके बोझिल मनपर चट्टाने टूटरही थीं।

× × ×

चिता जलनेलगी धायँ-धायँ। लपटे आसमान चाटने लगीं। श्रमिक एकबार चिताकी ओर बढ़ा। शवके सिरसे कपड़ा हटाकर उसने एकबार मुँह देखा फिर वह फफक उठा। उसे अपना ही रोना खल उठा। दाढ़ोंको जमाकर वह चुप होरहा।

दग्धकर चलते वक्त लोगोंने उससे कहा—"तुम्हें श्राद्ध करना होगा।"

"श्राद्ध फुरसतवालोंकेलिए है।" वह बोला। "मुझे बच्चोंके शाम के आहारकेलिए मेहनत करनी है।"

उसकी लेखनी फिर चलपड़ी।

अकाल

अकालपीडित बंगालका ककाल लडरहा था—क्षुधासे, दबाए अन्न के लाभखोरोंसे, रक्षकोंकी ग़ैरजिम्मेदार नीतिसे ! फिर भयकर जबडे खोले मौतके डरसे, महामारीसे, कुत्तोंसे !

नोआखाली जिलेके एक सामान्य कस्बेमें अच्छे-खासे मकानोंकी ऊँची क़तारमें एक दोमजिला मकान खड़ा था। सूना-सूना, गन्धाता, काटता-सा। ऊपरी मंजिलके एक कमरेमें कुछ जान बाकी थी, कुछ बक-झक होरही थी। फर्शपर कुछ शक्लें पडी थी जिनमें जाते-जाते कुछ जानें अटकरही थीं। बंकिम कबका सिधारगया था पर उसकी पत्नी महीनोसे लड़ती लडती मृत्युसे अभी-अभी हारी थी। मरनेके पहिले उसने जोरसे अपने साल-भरके सूखे बच्चेको कसकर चिपका लिया था। बच्चा भी आहारकेलिए रह-रहकर सूखे स्तनोंको बरबस निचोड़रहा था। पर बजाय दूधके उनसे निकलता था लहू।

बच्चा रह-रहकर चीत्कार करता। अकालने उसे चूसलिया था। सालभरका वह बालक चार महीनेके बच्चे-सा लगता था। उसकी आवाज कमजोर थी, काया निर्जीव-सी। फिरभी शक्तिभर वह माँकी लाशपर सिर पटकरहा था। जब उसे दूध न मिलता वह चीत्कार करता। और जब वह चीखता, कुछ दूरपर पडी उसकी दादी सिर उठाती और धीरेसे कहती—आ मेरे लाल, इधर आ। भगवान, आज यह दिनभी देखनापड़ा !

स्वयं वृद्धाकी हालत ख़राब थी। पाँचो बेटे देखते-देखते उडगये थे। दो क्षुधाके अर्पण हुए थे, तीन महामारीके। बहू अभी-अभी मरी थी और पोता बहूके ककालसे जीविका माँगरहा था। वृद्धा किसी भूलसे जिए जारही

थी। व्यतिक्रम प्रकृतिका नियम है : सृष्टिमें भी, संहारमे भी। उसी व्यतिक्रम के नियमसे—मृत्युकी भूलसे—वह जिए जारही थी। उसके पञ्जरमें इतना बलभी न था कि वह खींचकर बच्चेको अपने पास करले। उसके चीत्कारसे वह जरा सिर उठाती, कमजोर आवाजमें अपनी किस्मतको कोसती, फिर भगवानकी दुहाई देकर पडरहती। अवसन्न, निश्चेष्ट।

कुछ देरतक बच्चा हाथों और मस्तकसे माँके पञ्जरसे दूध निकालनेकी विफल चेष्टा करतारहा, फिर उसने अपना मस्तक माँके स्तनाभासपर पटक दिया। दिनोंके निराहारसे उसकी जीवन-शक्तिभी क्षण-क्षण क्षीण होरही थी।

सहसा बच्चा जोरसे चीखउठा। वृद्धा पहले तो चुपरही। कुछ अभ्याससे, कुछ अपनी मरणोन्मुख अवस्थासे। दूसरोंकी मददभी प्रायः अपना उदर भरनेकेबाद, फुरसतमें मनुष्य करता है। भूखकी पीर सब पीरोंसे बुरी होती है। सारी व्यथाएँ मनुष्य बर्दाश्त करसकता है पर पेटकी पीडा उसकी सहनशक्तिके परे है। सभ्यता और संस्कृतिके सारे नियम-संभार धरे-पडे रहजाते हैं जब उदरकी व्यथासे जर्जर बुभुक्षित मानव अपने आहारके लिए बाहर निकलता है। उसकी चेष्टा तब हिंस्र जंतुओंसे कहीं भयङ्कर होजाती है। कहते हैं पेटकी ज्वाला अत्यन्त प्रदीप्त रहनेपर भी शेर शेरपर हमला नही करता, पर मानव मानवपर करता है। भूखसे व्यथित मानव अपने बनाये झूठे परिधानको अलगकर अपनी आरम्भिक हिंस्र नग्नता धारण करता है और अपने दिखानेवाले मिथ्या दाँतोंको पीछेकर विकराल सहज दाढ़ोंको निकाले सामनेकी वस्तुपर टूटता है। और यदि वह ऐसा फिरभी नहीं करता तो निश्चय उसकी हमलावर शक्ति क्षीण होचुकी होती है, कुछ मानवताके उसूलोंके कारण नही।

वृद्धाभी अब सोचली थी। उसकी संघर्ष-शक्ति अब अत्यन्त क्षीण होगयी थी। इसीलिए जब बच्चा जोरसे चीखउठा तबभी वह चुप पडीरही। पर बच्चेने उसे सोने न दिया। अपने कातर भयभीत स्वरसे उसने घरकी

दीवारें हिला दीं। वृद्धाने बच्चेकी दयनीय कातर आवाज तो सुनीही, कुछ चरचरका-सा शब्दभी सुना। उसने कष्ट और अनिच्छासे जो अपना सिर उठाया तो दिलको हिलादेनेवाला एक दृश्य उसने देखा—बच्चा अपने नन्हे हाथोंसे मृत्युसे लड़रहा था। मृत्यु भयङ्कर मुँह खोले विकराल दाढोंमें उसे लेनेकी चेष्टा कररही थी और वह आदमजाद कमजोर सिपाही कमजोर जरियोंसे ही अपनी जानकी रक्षा कररहा था। मृत्यु साकार थी—उसके चार पैर थे, दो तीव्र कान और बित्तेभर नीची लटकती जबान। पिछले दोनों पैरोंको दीवार और फर्शकी संधिपर जमा एक कुत्ता दोनो अगले पैरोंसे बच्चेके हाथोंको दबा गलेपर दाँतोंकी निरन्तर चोट कररहा था और जब बच्चा अपने तीव्र स्वरसे जमीन-आसमानको भरनेलगता या हाथोंके सहसा छूटजानेपर उन्हे ऊपर उसके मुँहपर मारता, कुत्ता गुर्राताहुआ ऊपरके जबडेको दाँतोंके ऊपर चढा कर गुस्सेसे अपने दाँत उसके गलेमे गडादेता। तब बच्चा आसमान सिरपर उठालेता।

वृद्धा दादीने अपने एकमात्र वंशधरको जब इस प्रकार मृत्युसे संघर्ष करतेपाया तब एकबार तो उसने उठनेका बलपूर्वक प्रयत्न कियाही, मगर उसके पैरोंने जवाब देदिया, आँखोंके सामने अन्धेरा छाचला। उठना असंभव समझ उसने वहींसे हाय-तोबा मचाना शुरू किया। पर उसका हाय-तोबा कुछ बिखरे अनर्थक शब्दों—हाँ-हूँ—के सिवा और कुछ न करसका। कुत्ता बन्दरकी औलाद आदमीकी इस बपौती भभकीका आदी होचुका था। एकबार उलझती वृद्धाकी ओर उसने सिर उठाकर खीस निपोरदिया, फिर अपने अधमरे शिकारको खींचता वह दूसरे क्षण जीनेपर था।

वृद्धाका सिर घूमगया। धीरे-धीरे उसने कहा—तू झूठ है, ग़रीबोंका दुश्मन। तेरे वेद-पुरान सब झूठे हैं।

ग़रीबने आख़िर समझा पर सबकुछ खोकर, कालके गालमे जाकर।

× × ×

कुत्ते मोटे दीखते : स्नायु-पीवर, और मानव मज्जाविरहित कंकाल-पञ्जर। कुत्ते भेड़ियोंकी भाँति मनुष्यपर सामनेसे टूटते और मनुष्य कावा काट दुम दबाजाता। लोग कुत्तोंकी राह छोड़देते। उन्हे सामने आते देख अगर तरह देनेका मौक़ा न होता तो दाँत खोल अपनी सारी चेष्टा वैसी करलेते जैसी कुत्ता अपने स्वामीके सामने बनाता है। वफादार जानवरने वफादारी अपने आक़ासे सीखी थी और अब उसके दुर्दिनमे वह उसका-सा ही व्यवहार करता था। वह उस गली, कमजोर, दयनीय, पनाह-माँगती कायापर घृणा और उपेक्षा-भरी निगाह डाल, गुर्राकर आगे बढजाता। गरीब मानव धीरेसे सिर घुमा पीछे देखता—कुत्ता कही पीछेसे हमला न करे— और तेजीसे निकल जाता।

× × ×

लाल सूरजका दहकता गोला जब क्षितिजपर निकला तब उसने कस्बेकी बाजारवाली गलीके मोड़पर कुछ देखा। किसी सफ़ेद चीजपर, उसके बिखरे दानोंपर सभ्य मानव टूटरहे थे—भेड़िएकी दक्षतासे—सफेद चीजपर भी, टूटते मानवोंपर भी। संघर्ष घना होगया। लोग आतेगये, गुँथतेगये। भीड देख दूरसे आदमी दौड़ते, सफेद बिखरे दाने देख वे उनपर टूटते। भीड़के आदमी पारस्परिक युद्धको क्षणभर स्थगितकर नवागतोंपर टूटते और दम तोड़देते। जो नई भीड़ आती पुरानीमे खपजाती और भीड़के आँकड़ोंके गिरनेसे सफेद दानेभी अब छिपचले।

रणभूमिमे भेड़िए लगते हैं, कुत्ते और चील, सियार और गिद्ध। जाने कहाँ ये छिपेरहते हैं जो ऐन-वक्तपर अपने हककेलिए आखड़े होते हैं। और वे कुछ करभी गुजरते हैं। कुछ खाते हैं, कुछ खिलाते हैं, कुछ लेजाते हैं। मनुष्य इन चोंचलोंमे नही पड़ता। शक्तिभर दम रहतेतक वह लड़ता है— वस्तुकेलिए नही आनकेलिए, और छोड़ता तब है जब या तो एक पक्ष टूटजाता है या स्वय वह टूटजाता है। इस दर्मियानमें युद्धका कारण— वस्तु-केन्द्र— नष्ट होजाता है।

कुत्तोंके झुण्डने उस मानव झुण्डपर हमला किया। पञ्जर-प्रमुख वह थका मानव-झुण्ड मैदान छोड़चला। नीचे लाशें जो गिरगयी थीं उनपर कुत्ते, सियार, गिद्ध, चील, कौए सब टूटे। कुछ देरतक छीना-झपटी हुई पर आहार सबको मिला, सबसे अधिक कुत्तोंको। और उन लाशोंके नीचे बिखरे सफेद-दानोंको क्षितिजसे ऊपर उठते सूरजके लाल दहकते गोलेने आँखें फाड-फाड़कर देखा फिरभी वह न पहचान सका वे दाने किस चीजके थे जिनपर यह मरणान्तक युद्ध ठना था और जिनपर लाशें गिरी थीं—कटीं-पिटीं, चिथड़ी लाशें।

दाने वे चावलोंके थे। जिन्हे अब पहचानना कठिन था। रातके अँधियालेमे चोट्टे लाभखोरोंने चावलोंके कुछ बोरे ढोए थे और उन्हे गोदाम लेजाते समय किसी प्रकार एक बोरा राहमे गिरपडा था। उसे उठाकर फिर लेजाना जानको जोखिममे डालना था, इसलिए कोई लौटा न था।

और अब जब मानव-रक्त बहचुका था, लाशोंपर कुत्ते-चील झपट चुके थे, उन धूल-धूसरित रक्तरजित दानोंको कुछ नरककाल फिर झुके-झुके चुनरहे थे। डरे-सहमे, गलियोंके मोडकी ओर बार-बार मुड-मुड़ देखते, कुत्तोंकी दूरकी आवाजपर कान लगाए, चीलोंके भयानक पङ्खोंकी छायामें रह-रहकर साँस लेते। नङ्ग-धडङ्ग वे छाया-से डोलते नर-कंकाल।

रात आधीसे ऊपर जाचुकी थी। भूखसे व्याकुल जनता सोती नहीं। पर भूखसे व्याकुल कुछदिन चलजाता है, न्युमोनियाका मारा नहीं चलता। लोगोंके शरीरपर वस्त्र कम थे। वस्त्रोंको अधिकतर लोगोंने अपने उदरकी आगमें ही जलादिया था। शायद उन्हींके पास कपडे-लिहाफ बचरहे थे जिन्होंने घरोंमे पडे रहकर ही जठराग्नि सहना या उससे मरजाना स्वीकार किया था। खुशहाल तो कोई था नहीं। फिर क्या खुशहाल और क्या गरीब? जब भूखका दानव झपटा तब सबपर समान रूपमे झपटा। जो खुशहाल

थे उन्होंने भी पैसे कमानेकी नीयतसे ग़ल्ले वेचदिए थे। रुपए शायद जहाँ तहाँ थे पर रुपए पेट तो नहीं भरते। अब वे खुद उन्हीं चावलोंके दानोंके लिए तरसरहे थे। पर चावलोंके तो दर्शनभी मुहाल थे।

न्युमोनियाके मारेहुए सड़कोंपर पड़े थे—चील-कौवों, कुत्ते गीदड़ोंके पञ्जोंके नीचे। हिन्दुओंके दाह-कर्म, मुसलमानोंके कफन-दफन सबकुछ दोनोंको विस्मृत होचुके थे। भाईचारा अन्ततक निभा। दोनोंके रक्त मिलरहे थे, दोनोंके शरीर एक-दूसरेसे गुँथे थे। चासा और जमीदार एकही पलँगपर सोए थे जो जमीन थी, एकही साए-तले पड़े थे जो आसमान था।

रात आधीसे ऊपर जाचुकी थी। चारेकी खोजमे दिनका थका मानव जहाँ-तहाँ सोया पड़ा था। जो भूखे थे वे जिन्दा जागते कराहरहे थे। भूख शायद जल्दी मरने भी नहीं देती। और मरनाभी कुछ आसान नहीं। आत्म-हत्या वीर भी करता है, कायर भी। आत्महत्या कठिन भी है आसान भी। पर लाखोंकी तादादमे भूखसे मरतेहुओंको देखकर भी अनुमान होता है भूखसे मरना भी जल्दी नहीं होता। और मरते-मरते कितनी जिन्दगियोंकी दौरान उन कुछेक दिनोंमे ही भुगतनी पड़ती है। जरा-सा लहमा कितने अरसे में कटता है यह कोई भूखसे मरनेवाले किसी अभागेसे पूछे। मरना भला शायद किसीको नहीं लगता। पर भूखसे मरना सब प्रकारकी मौतोंसे बुरा है।

रात आधीसे अधिक जाचुकी थी। दिनका थका मानव जहाँ-तहाँ सोरहा था। जो भूखे थे वे मौतके मुँहमे पड़े कराहरहे थे। एक तिमजिले मकानके बिचले हालमे कुछ प्राणी साथ मरनेकेलिए साथही सोए। पर मरना-जीना सदा साथ नहीं होता, चाहे ऐसा चाहनेवाले सगे-सम्बन्धी ही क्यों न हो।

जो उस कमरेमे दाखिल हुए थे वे थे तो सगे-सम्बन्धी: बाप-बेटे, दादा पोते। पर वे साथ मर न सके। फिरभी उनमेंसे कई दम तोड़चुके थे। उनमेसे एक—मालिक मकान और उसका बेटा आदमियतके कुछ खुश्क नाते निबाहरहे थे।

"बाबा !"—जवान बेटेने कमजोर आवाजमे पुकारा।

"बेटा"—उत्तरमे उससे भी कमजोर आवाज सुनपडी।

"बाबा, रात बडी भयंकर दीखरही है।"

बाप कुछ न बोला। उसने अपना मुँह लिहाफके भीतर छिपालिया। इर्द-गिर्द कुछ लाशे, जवान और बूढी पडी थी। बदबूसे सिर फटाजाता था मगर पिता-पुत्र दोनों उसके आदी होगए थे। पहले नाक-मुँह भी बन्द करते थे मगर अब वे उसका जिक्रतक न करते।

"बाबा !"—बेटेने फिर पुकारा।

"हाँ"—बापने लिहाफके अन्दरसे ही जवाब दिया।

"रात बडी भयानक दीखरही है, बाबा !"—बेटेने बात दुहराई।

"हाँ" —बापने फिर अनबूझी-सी हामी भरी।

"ऐसी रातमें मरना तो बडा भयानक होगा, बाबा।"

"अत्यन्त असुविधाजनक।" बाप बोला।

"क्या कहा, बाबा, 'अत्यन्त असुविधाजनक'?"

"हाँ।"

"क्या मतलब?"

"कुछ नहीं।"

"बाबा किसी दूसरी दुनियामे फिररहे हैं। 'असुविधाजनक' कैसा, बाबा? क्या दाह-कर्मकी सुविधाओंको विचाररहे हैं? फूँकनेकेलिए यहाँ बैठा कौन है—बाबा? और लकड़ी कहाँ हैं?" बेटा धीरे-धीरे कुछ बड़-बड़ाता-सा बोला?

"पागल!" बापने कहा—"फिर रातकी भयकरताका तुझे कैसे खयाल होता है। रात क्या मौतसे अधिक भयंकर है?"—लिहाफके भीतर स्वर कुछ भारी होरहा था।

"बड़ी भयंकर है रात, बाबा। और वह देखो कुत्ते गीदड रातको भी

चैन नहीं लेते। और मरनेके बाद, बाबा, यह हमारे भी चिथड़े करडालेंगे।"

"हाँ, कुछ ऐसाही है।" बुड्ढा कुछ अनमना-सा जानपड़ा। उसकी आवाज फिर कुछ भारी-सी जानपडी।

बेटेने बिना किसी अर्थके साधारणतया पूछा—"कुछ खारहे हो, बाबा? आवाज भारी-सी लगती है।"

"खारहा हूँ अपना मास, और नहीं तो क्या?" झल्लाया-सा पिता बोला, पर सिर लिहाफके अन्दरही रखे-रखे। आवाज इसबार भी कुछ भारी थी, काफी भारी।

"गुस्सा न करो, बाबा। पर कुछ खाते जरूर हो।"

इसी बीच कुछ आहट-सी हुई। दोनोंने साथही दरवाजेकी ओर आँख उठाई। बात जो चली थी वही-की-वही रहगई। सामने मनुष्यका सामान्य सहचर और उसका असामान्य शत्रु खड़ा था—हाँफता, लम्बी जीभ लटकाए, राल टपकाता, उनपर भयानक लालचभरी नजर फेंकता—कुत्ता।

पिता-पुत्र दोनों सहमगए। फिर पिताने धीरेसे कहा—"एकसाथ आवाज लगा वरना अभी यह हम दोनोंपर हमला करेगा।"

दोनोंने स्वर मिलाकर आवाज लगाई। पर आवाज निकली थोड़ी जिसकी कमजोरी जाहिर थी। कुत्तेने भी जानलिया—आवाजमें दम नहीं है। ऊपरका जबड़ा खींचकर बाप-बेटेको उसने मसूडा दिखादिया, मानो वह उनकी बेबसीपर हँसरहा हो। फिर कुछ सजग सा हो उनपर टूटनेकेलिए वह तैयार हुआ।

बाप और बेटेके अन्तर काँपगए। कुत्तेने अभी मुँह खोलकर जम्हाई ली थी। उसके भयङ्कर दाढ़ोंवाले मुख-गह्वरका विकराल अन्तर दीख गया। दोनों काँपउठे। कुत्तेके दाँतोंके बीच मृत्यु कितनी भीषण होगी इसकी कल्पनाकर दोनों अवसन्न होगए। पिताने अपनी सारी इन्द्रियाँ समेटकर

मानों उन्हे अन्तर्मुखी करलिया। मरनेसे पहलेहो मरजानेका उसने स्वाँग किया। जिसमे उसे मृत्युकी वेदना न हो।

इसी समय कुत्तेके पीछे कुछ गुर्राहट सुनपड़ी। जब यह कुत्ता ऊपर चढरहा था तभी एक दूसरेने उसे देखा था। उसे शायद यह भान हुआ कि कुत्तेको किसी शिकारका सुराग मिला है। बस, उसके पीछे-पीछे वहभी जीनेपर चढआया था। अब जो उसने आदमियोकी बास पाई तो पहले कुत्तेसे उसने मैदान छीनना चाहा। इधर जो पहलेने उसकी आहट पाई तो वह पीछे फिरा। फिर बिजलीकी तरह झपटकर उसने उस कुत्तेपर हमला किया। गुर्राहट और भौकनेसे मकान गूँजउठा। साथही झपटोंकी मार कुछ ऐसी गहरीहुई कि दोना जीनेके नीचे जारहे।

इधर बाप-बेटोंपर जो बुरी बीतरही थी वह टली। आसन्न विपत्तिसे मानों छुटकारा मिला। बेटा लुढ़कताहुआ दरवाजेके पास पहुँचा और उसने किसी तरह नीचेकी चिटखनी लगादी। अब उनकी साँस लौटी और कुछ देरकेलिए उन्होंने अपनेको सुरक्षित समझा।

बाहरका खतरा जब जातारहा तब बेटा बापकी ओर फिर झुका।

"बाबा, कुछ बात जरूर है।" उसने ऐलान-सा किया।

सहसा गुस्सेमें बापने लिहाफ फेकदिया। नीचेसे बच्चेका कटा-पिटा शरीर निकल आया। कई स्थलोंपर दाँतके निशान थे जहाँसे काट-काटकर बोटियाँ निकालली गई थीं। बच्चा बुड्ढेका पोता था, नौजवानका बेटा। भूखकी तेजीमे कुछ जान न पडा। वृद्ध जो कभी पोतेपर जान देता था आज उसके शवकी बोटियाँ नोचरहा था।

बेटा ताकता रहगया। इस अनहोनी बातकी ओर उसका ध्यान नहीं गया था। इससे भी जान बचसकती है, उसने एकबार सोचा, फिर वह धीरे-धीरे बच्चेकी लाशकी ओर बढ़ा। बापने उसकी मन्शा भाँपली। उसे मरे माँसमे भी स्वाद मिला था और कम-से-कम उससे कुछ घड़ियाँ

जिन्दगीकी तो अवश्य कटसकती थी। इसलिए उसे स्वीकार न हुआ कि कोई उसके अधिकारमे हिस्सा ले चाहे वह उसका बेटा ही क्यों न हो। फिर बेटे-बापकी कृत्रिम सीमाएँ भी भूखने मिटादी थीं, दोनोंके सम्बन्धकी कृत्रिमता उसने स्पष्ट करदी थी। पिता-पुत्रके नाते भी अधिकतर सभ्य समाजके चोचले हैं ऐसा पिताको पहिलेही भान होगया था, और समान स्थितिमें समान आपत्ति झेललेनेके बाद यह सत्य पुत्रसे भी न छिपा रह सका था। उसने भी अपनी जिन्दगीकी कुछ घड़ियाँ बच्चेकी मददसे बढ़ानी चाहीं।

वह उसकी ओर बढ़ा।

"खबरदार ! बस अपनी जगहपर बने रहो।" बापने बेटेको ललकारा।

"बाबा, उसपर हक मेरा ज्यादा है, या तुम्हारा?" बेटेने भी बनावट और संदिग्ध मानवताके व्यवहारको दूरस्थ करतेहुए तथ्यही पूछा।

"मेरा। और याद रख, जो तूने इधर कदम बढ़ाये।" उत्तर मिला।

पर कदम बढाये बेटेने बापकी ओर—कमजोर लड़खड़ाते कदम, सौ-सौ मनके। दीवारके सहारे उधर बाप भी खड़ा होरहा था। उठना जरा मुश्किल था इसलिए बैठारहा वह। पर बातोंसे लगातार बेटेको डराता-धमकाता रहा, कुछ काँपता-थर्राता।

इधर भूखेको एक तदबीर सूझी। उसकी समझमे आया कि मनुष्यका मॉस खाकर भी शरीरकी रक्षा की जासकती है और वह उस संभाव्य उपायकी ओर लपका। बुड्ढेने उसे एकबार फिर ललकारा पर यह मानव निकला था भक्ष्यकी खोजमे और भक्ष्य उसके सामने था। यदि भेड़िया होता तो वृद्धकी ललकार सुनकर राह छोड़देता, शेर होता तो सहमकर शायद थम जाता पर यह न तो भेड़िया था न शेर। साबुत मानव था वह

जो हजार-हजार सदियोंके बाद आज अपनी खरी प्रकृतिको समझपाया था, जिसका पग-पग मानवतापर व्यङ्ग था।

बेटा जबतक बच्चेतक पहुँचे बापने अपना कर्त्तव्य स्थिर करलिया था। उसका दाहिना हाथ जोरसे बच्चेका दाहिना पाँव पकडेहुए था। बेटा जब उसके पास पहुँचा उसने अपनी मुट्ठी और जोरसे कसली। बेटेके पाँव डगमगा रहे थे। उसकी चाल स्वप्नमें चलनेवालेकी-सी थी—अस्थिर, सद्यः-स्खलित। मगर थी वह नितान्त निश्चित, लक्ष्यकी ओर अविरमित बढती।

फिर एकाएक उसनेभी झपटकर बच्चेका बचा पाँव पकड़लिया। फिर तो कठिन होगया। खींचा-खींची होनेलगी। सहसा शव बीचसे चिर गया। बच्चेका अर्धाङ्ग औचित्यसे प्रत्येकके हाथमे आरहा—आधा पिता के हाथमें, आधा पितामहके।

परन्तु बेटा कुछ विक्षिप्त-सा होचला था। उसे जानपड़ा चूँकि अन्न के दिन अब लौटनेके नही इसलिए आगेकेलिए केवल यही शव सम्हालकर रखना उचित होगा और सुकर। बाजकी तरह वह आगे बढा और अपने पितासे जा टकराया। पिता उसे सम्हाल न सका पर शक्तिभर वहभी लात चलाने लगा। दो मानव-जन्तु मरणान्तक युद्धमे गुँथेहुए थे। दोनों एक-दूसरे पर भीषण चोटे कररहे थे, गहरे घाव—दाँत और नाखूनोंसे।

कोई छुड़ानेवाला पास न था। कमरेके किवाड़की चिटखनी बन्द थी। युद्धके साक्षी थीं कुछ सड़ी-गली लाशे जो उनपर विद्रूप मुद्रासे हँसरही थी। पुत्रने एकाएक पिताका गला घोंटडाला और अन्तिम क्षणोंमे संघर्ष की एकत्रित शक्तिको लगा जो पिताने पुत्रको लात मारी तो वह भी सीधा दीवारसे जा टकराया।

क्षण-भर बाद दोनों आँखे फाड़-फाड़कर छतकी ओर देखरहे थे।

जीवन

बड़ी-बड़ी कजरारी आँखे लम्बी-अलसाई पलकोंके सायेमे नीड़ किए सोती थी। पलके धीरे-धीरे खुली, नील समुन्दर-सा नयनोंका विस्तार धीरे-ही-धीरे जैसे सोतेसे जागा, हल्के-हल्के लहरानेलगा। और इन लहरों की तटवर्ती बोझिल पलकोंके ऊपर काले घने बालोंका सहज-वहनीय सँभार।

अभी रातकी खुमारी मिटी न थी। आँखे रह-रहकर झपकजाती, जब पलके थकानके भारसे उठती फिर गिरपड़ती। पर उन्हे उठनाही पड़ा। वसूने लम्बी गरदनपर अपना मुँह रखदिया था, मेघोंमे उसकी प्यार-भरी उँगलियाँ फिररही थी।

"अमिते!"

पलके कुछ रिझी-खिझी उठी।

"अमिते!"

पलके उठी। कुछ 'श्याम-श्वेत-रतनार'-सा झलका।

"अमिते, प्रेयसि!"

अधखुली आँखोंने बरबस पलकोंको उठाया। प्यारका हाथ उन्हे धीरे-धीरे उँगलियोंसे खोलरहा था, चुटकीके सहारे।

"ऊँ!"

"आँखे खोलो, रानी।"

"ना, ना, अभी रहनेदो।"

दोनों हाथोंकी चुटकियाँ दोनों आँखोपर आगई।

"देखो, अभी रहनेदो, सोनेदो—बस जरा और।"

वसूने चुटकियाँ आँखोंसे हटाली, कही और रखी, कुछ किया।

जैसे बिजली छूगई हो। उछलपड़ी अमिता। बोझिल पलकें उठी धनुष तनगया—वह गाडीव जो युद्धके बाद अर्जुनसे न चलसका था, आज चला। टकार हुआ—

"हाय! क्या करते हो। सुनो! . सुनो!"

मछलियाँ तड़पनेलगीं, लहरे उठीं, गिरीं, फिर अलसाईं सुस् शात-प्रशान्त हो रप-रप करनेलगा।

× × ×

सालभर बाद।

मिदनापुर दुर्भिक्ष-पीड़ित था। नोआखाली, बारीसाल—सबसे गया-बीता। जहाँ हीरेकी कनी बिखरी फिरती थीं आज चावलोंकी चुनी जाती थी। राजा रक थे, रईस कङ्गाल, चासा मॅंगते-मरे।

अमिताकी आँखे अबभी बड़ी बड़ी थीं, मगर न तो अब वे कजरारी ही थीं, न वे अलसाई पलकोंके साएमे नीड़ किए सोती ही थीं, और न उनके खुलनेपर नील समन्दर-सा ही हल्के हल्के लहराता था। आँखोके श्वेत-श्याम कोए पीत-मैले होगये थे, उनमे पीत ही डोरे ताना-पाई करते थे। और आँखोंका उभार अब गह्वरकी गहराईमे डूबगया था।

और बोझिल पलकोंके ऊपरवाला काले घने बालोंका सहज-वहनीय सभार! वह गिनेचुने सफेद-काले खिचड़ी बालोंकी एक सूखी लुप्तप्राय चोटी था।

फिरभी अमिता अपना व्यवसाय किएजाती थी। कभी-कभी गोरोंकी क़तार-सी हॅसती-उछलती आती, रुलाती-खिझाती चलीजाती। दिनो जाँघे फटती रहतीं, हफ्ता बदन टूटता रहता, याद कॅपाती रहती—धुँधली धुँधली याद जिससे रोंगटे खड़े होजाते।

जैसे कगाल, अकालके मारे नर-नारी मुट्ठीभर अन्नपर टूटते वैसेही

मोर्चेपर जूझनेवाले थके-माँदे गोरे बर्मा-लामसे लौट औरतके ढाँचेपर टूटते। कुछ सिक्के, कुछ बिस्कुट, डबलरोटी, मक्खनकी टिकिया फेंकदेते। फिर हँसते हँसते चलेजाते। थका-टूटा अमिताका कंकाल टूटते-टूटते रहजाता। अमिताके गिरते-गिरते कुछ रोक-थाम होजाती। वह कुछ खालेती, कुछ रख रहती। दिलही बहलजाता।

औरोंसे तो अच्छी ही थी अमिता, औरोंको तो ये गोरे भी नसीब न थे। नीचे लाशें थी जिनपर वे सोती गहरी नींदमें और फिर वे खुद गाव-तकिया बनती उन लाशोंकी जो गिरती भूखकी मारसे। अनेक ऐसी भी नारियाँ आती जिनका कभी सुहाग बलता था और जो आज बुझचुका था। वे अमिताको हसरतभरी निगाहसे देखती, घूरती, गाली देती चली जाती। उसको कस्बी, रण्डी, खानगी कहती। इनमेंसे कइयोंने कितनीही बार उससे बिलबिलाकर कहा था—"मुझेभी कुछ काम लगादे, किसीके साए करदे।" पर अमिता अपने व्यापारमें हिस्सा देकर अपना अनुपकार क्यों करती? उसने चुप करलिया।

वह सोचती—वह फिरभी हजारोंसे अच्छी है। और सोचती—क्या सभी धरमकेलिए मरजाते हैं?

× × ×

अफ्रीकाकी लड़ाई बड़ी भयङ्करहुई। अधिकतर भारतीयोंकी वीरता से ही वह जीतीगई। वहाँके इतालियन साम्राज्यकी कमर तोड़नेका श्रेय भारतीयोंकोही है। और जब इन भारतीयोंके बलिदान इतिहासके आँकड़े तैयार कररहे थे, मिदनापुरका वसू उनमें अपना विशेष स्थान रखता था।

जापानियोंने जिस समय बर्मा लिया था और जर्मनी जब राष्ट्रपर राष्ट्रकी स्वतन्त्रता कुचलता जारहा था उस समय अनेक विचारवान भारतीय युवकोंने जर्मनी और जापानको मानवताका शत्रु कहकर पुकारा था, वसू

उनमेसे एक था। और वह ऐसा सोचकर भी बैठा न रहसका। इमर्जेन्सी कमीशन उसने लेलिया और शीघ्र वह अफ्रीकाके कठिन से-कठिन मोर्चेपर जापहुँचा।

अफ्रीकासे इतालियन जब निकाल दिएगए और सिसिलीके टापूपर भारतीय रिसाले दौडनेलगे, कैप्टेन वसुमित्र भी अपना रिसाला लिए इतालियनोंकी पीठपर था। उसकेलिए यह लड़ाई अंग्रेजोंकी मददके अर्थ न थी। वह अपने विचारोंसे प्रेरित, मानवताके शत्रुओंसे लड़रहा था, बुनियादी स्वतन्त्रताकी रक्षाकेलिए।

× × ×

नेप्ल्ससे करीब सौ मील दखिन-पूर्वकी ओर अंग्रेजी सेना पडाव डाले पडी थी। उसकी कितनी ही टुकडियाँ इतलीके अनेक मैदानों, शहरों और मोर्चोंपर लडरही थी। वसूकी कम्पनी काफी थकीहुई थी और कुछ समय केलिए रिजर्वमें होनेके कारण आराम कररही थी। कैप्टेन वसू कुछ वालन्टियरोंको ले इधर-उधर सरवेकेलिए रोज सुबह चलाजाता और दिन डूबते-डूबते लौटता।

शामको ऐसेही दौरेसे जब एकदिन कैप्टेन लौटा तब वह विशेष थकाहुआ था। स्नानकर वह बिस्तरमें घुसा और तुरन्त सोगया। आधीरात के समय एकाएक एलार्म हुआ और वह स्ट्रेचरसे कूद टेन्टसे बाहर निकल आया। खबर मिली कि जर्मन और इतालियनोंकी एक सम्मिलित सेना पास के जङ्गलमें छिपी हमला करनेकी ताकमें है। कमाण्डरने कैप्टेन वसू और ग्रेगरीको अपनी अपनी कम्पनियोंके साथ तुरत धावा करनेका हुक्म भेजा था।

वसू और ग्रेगरी अपनी-अपनी कम्पनियोंके साथ चलपडे उस जङ्गल की ओर। धीरे-धीरे, लुकते-छिपते, फूँक-फूँक पाँव रखते।

शत्रु सजग था। पिट-पिटहुई और मशीनगनें धड़ाधड़ फायर करने लगीं।

ग्रेगरी अपनी गोरी पलटन लिए वसूके दाहिने बाजूपर था। उसकी पहली कतार गिरगई। दूसरी आगे बढी। बन्दूक लिए। कैप्टेन वसूने धावा करनेका हुक्म दिया। और पूरी दौड़ शुरू होगई। पर सामने जङ्गल था। पेड़ोंके पीछेसे सनासन गोलियाँ आती और कतारें सोतीजाती। मगर पूरी तेजीके साथ जो हमला हुआ तो जङ्गल घिरगया और जर्मनोंने हथियार रखदिए।

सुबह अंग्रेजी सेना कैदियोंको लिएहुए पड़ावपर पहुँची। पर दोनों कैप्टेन घायल थे। ग्रेगरीकी पस्ली तोडतीहुई गोली पार निकलगई थी, वसूकी बाई कलाई टूटगई थी, उसमे ग़जबका दर्द था। दोनों सेनाके अस्पतालमें पडेहुए थे।

× × ×

मिसरके एक फौजी अस्पतालमें इलाज और कुछ आरामकेलिए कैप्टेन वसू भेजदिया गया था। ग्रेगरी ऑपरेशन बरदाश्त न करसका। उसकी मृत्यु होगई।

इधर कई दिनोंसे वसूकी तबियत लगती न थी। बार-बार अमिताकी याद उसे सतारही थी। इधर प्रायः दो महीनेसे उसका कोई समाचार नहीं मिला था। यह कोई अजब बात न थी। कितनी ही बार मोर्चेपर होतेहुए तीन - तीन महीनोंतक उसे अमिताके खत नहीं मिले थे फिरभी उसे ऐसी बेचैनी न हुई थी जैसी इसबार थी।

इसका कारण औरभी था—बंगालमें अकाल पड़ा था और यद्यपि इसकी खबर मोर्चेके सिपाहियोंको जब-तबही मिलती थी, फिरभी वसूको कुछ पता इतलीमेही चलगया था। अब अस्पतालमें तो उसे बंगालकी दयनीय दशाका निश्चयही होगया था। किसप्रकार गाँवों और कस्बोंसे लोग भोजनके लिए कलकत्ते आने और मरनेलगे। किसप्रकार उसके अपने जिले मिदना-

पुरके घरोंमे, गलियोंमे, सड़कोंपर, मैदानोंमें हजारों लाशें सडरही थी, इसका हाल उसने विस्तारपूर्वक मिसरके एक समाचार-पत्रमे पढा ।

दो महीनेसे अमिताका कोई पत्र न आया था। साधारण-सी बात होतेहुए भी दुर्भिक्षके रहते यह साधारण बात न थी और वसू कुछ घबडा उठा। उसने कुछ देरकेलिए सोचा—घरमें बखारेंभरी हैं, माँ-बाप, भाई-बन्धु, नौकर-चाकर सभी हैं, डर काहेका है। अमिता—उसकी प्रणयिनी अमिता—को उसके घरवाले अपने प्राणोंके मोल रखेंगे, यह वह जानता था। और यह सोचकर उसका जी कुछ ठिकाने हुआ।

पर यह सोच एकदिनका नही, नित्यका था। नित्य वह अपनी शका का समाधान करता और नित्य उसकी धारणा किसी अनागत भयकी कल्पना करती, भावी अनिष्टसे काँपउठती। युक्तिपूर्वक जब वह सारी बाते सोचता, समझता सब कुशल होगा पर तर्कका जीवन सहज जीवन तो नही है। तर्क से जिया तो नहीं जाता। जीनेकी नींव तो कमजोरियाँ होती हैं जो मनुष्य पर तब हमला करती हैं जब वह सर्वथा अप्रस्तुत और असावधान होता है। सो जब वह सर्वथा सुखी-सा प्रतीत होता, प्रसन्नचित्त होता ठीक तभी आशकाके कृमि उसके क्षतको चूसते। वह घबडा उठता।

एकदिन उसने डॉक्टरसे कहा—उसकी छुट्टी बाकी है। अगर वह उसे प्राप्त होसकती तो वह एकबार घर होआता। उसका चित्त स्वस्थ हो-जाता और आरोग्य लाभकर एकबार और वह शत्रुके हृदयपर आघात करता।

डॉक्टरने उसके विङ्ग-कमाण्डरको लिखा, उचित हवाले दिये, सिफा-रिश की। अफसर वसूकी वीरता और उसका निश्चय जानते थे। उसे घर जाकर एक महीना रहनेकी छुट्टी मिलगई।

× × ×

अमिता अब अपने ससुरके घरमें न थी। उसी घरमें इस प्रकारका व्यवसाय उसे अनुचित-सा जानपडा। सास-ससुर, देवर-देवरानी सभी कालके

आदमी भी सो चुके थे। उसे कोई कुछ कहनेवाला, रोकने या दुख माननेवाला न था फिरभी उसने वहाँ रहना ठीक न समझा।

वह उठकर दूसरी जगह चलदी, पर मिदनापुरके जिलेमे ही बनी रही। क्योंकि वही उसे सुविधा थी। पूरबी सीमापर उसे कुछ ज्यादा चल निकलनेकी आशा थी। जहाँ वह पहले थी वहाँकी वृत्ति आकाशकी थी, कुछ खास रास्तेपर नही।

इस नये स्थानमें सचमुच कुछ काम आसान होगया। उसकी-सी वहाँ अनेक थी। और सबको भरपेट अन्न मिलजाया करता था। फिर बात यह और थी कि यहाँके व्यवसायसे उसकी जानपर नहीं आबनती थी। कुछ जो वहाँ थीं उनका यह पेशा था, सनातन। वह स्वय तो आफतों और असुविधाओंका शिकार थी और पेटकेलिए दुनियामे अपनेको अकेली जान उसने इसे अख्तियार किया था।

उसकी एक सखी थी, पेशेकी—मुद्रिका।

"एकबात आज कईदिनोसे दिलमें घुमड़-घुमड़ उठरही है, मुद्रिके।" उसने एकदिन सखीसे कहा, भूमिकाके रूपमे।

"क्या ?" मुद्रिकाने पूछा।

"आज एकबात बार-बार दिलमें उठरही है, कहती हूँ।"

"क्या बात ? कामकी ?"

"नही जी, कामकी बात क्या सोचनी है। कुछ औरही है।"

"क्या ? कुछ कह तो सही।"

"बात यह है कि लगता है—वे हैं।"

"वे हैं ?"

"हाँ, वे हैं।"

"पर तू कहती थी न कि महीनोंसे उनका पत्र नहीं आया और यह

सम्भव न था कि वे होते तो मुझे इस प्रकार अपाहिजों - यतीमोंकी भाँति छोड़देते ?" मुद्रिकाने पूछते-पूछते उसीकी कभी कही बात दुहराई।

अमिता चुप रही, बोली नहीं।

"क्या बात है ?—बोल अमिते।" सखीने फिर पूछा।

"भई बात यह है", अमिता बोली, "कि इतने दिनोंसे जब उन्होंने मेरी सुधि न ली तब मुझे ऐसी धारणा होगई थी। फिर मैंने जो कुछ ऐसे घरोंमें पता लगाया जहाँके मर्द फौजमे थे तो पता चला कि उन सबके घरमें सरकारकी ओरसे अन्न मिलनेका प्रबन्ध है। पर इतना जरूर है कि इस प्रबन्धकेलिए जो आदमी फौजमे होता है उसे सरकारमे दरख्वास्त करनी पड़ती है। और चूँकि मैं उनकी आँखकी पुतली थी और फिरभी जब वे ऐसा न करसके तब मैंने सहजही जाना कि वे न रहे। दिन-रात निराहार रहकर मैंने उनका चिन्तन किया, पतिव्रतको सम्हाले रखा पर भूखकी बाढमे सब बहगया। जीवन इतना थोडा अभी भोगा था कि उसे खोते अच्छा न लगा और उसे सँजोरखनेकी लालसा बनी रही, बढतीगयी। फिर एक बात और होगई। जो उनके सगे थे सब चलबसे। उनके न होनेका विश्वास होही गया था। फिर तो मुझे अगर इज्जतका डर था तो अपनेही लिए न? उस विषयमे, मैंने सोचा, मैं अपना निश्चय आप करूँगी। और मैंने किया। जीवनकी अत्यन्त महानता और आश्चर्यजनक महार्हता के सामने भाव-जनित पवित्रता तुच्छ जानपड़ी। सतियोंके चरित्र सचमुच आडम्बरसे प्रतीत हुए। एकबार सोचा—यदि मेरी जगह वे होते, अथवा कोई पुरुष होता तो हमारी-सी अवस्था और 'नारी-उत्कर्ष' कालमे शायद यही करता। बस मैंने अपना कर्तव्य तभी स्थिर करलिया था।"

"और अब ?" मुद्रिकाने पूछा।

"अब ?"

"हाँ, अब ?"

"अब क्या करूँगी ?—यही तो सोचरही हूँ ।"

"यह तो दरसल समस्या है, अमिते ।"

अमिता चुपचाप आसमानकी ओर देखती रही । कुछ कहा नहीं उसने ।

"अमिते, वास्तवमें यह एक समस्या है । ऐसी बातें चूँकि होती नहीं । इससे उनका उत्तर भी सोचा नहीं जाता । पर अगर ऐसा हुआ, मेरी रानी, अगर सचमुच ही वे आगये तब क्या करोगी ? तब तुम्हारा क्या होगा ?"

अमिता फिर चुप रही ।

"अमिते !" मुद्रिकाने उसे पुकारा ।

अमिता एक शङ्का, एक प्रकारके आतङ्कसें भरगई थी, न बोली ।

"देखो, अमिते ।" मुद्रिकाने उसकी ठुड्डी उठातेहुए कहा ।

"हा, बोल ।" अमिता बोली । वह सोचरही थी वह भयानक बात । उसे नयनकी पुतली बनाकर रखनेवाले पुरुषकी बात । उस गरीबकी, अगर वह जीता हो ।

अमिता गहरा सोचरही थी । एक-एक बात जैसे उसके मस्तिष्क-पटलपर छाया डालती, अस्पष्ट डोलती-सी, फिर एकाएक दूसरी आती, अशुभ पक्षीकी भाँति वहभी अपने डैनोंकी अशुच वायुसे उसे छूती चली जाती । एकबार उसके जीमें आया कि जीवन भी क्या है, उसका लोभही क्या । अनन्त सख्यामें प्राणी मरे हैं; जीवनका सचमुचही मूल्य कुछ है नहीं । वहभी क्यों रहे ? उसने सोचा ।

फिर एकाएक उसे प्रतीत हुआ उसे असुविधा होरही है, सोचनेमें, कर्त्तव्यका मार्ग निश्चित करनेमे, जीनेमे । पर मरनेमें भी तो । मरनेमे भी कुछ कम असुविधा उसे न जानपड़ी । उसने अपना साम्प्रत मार्ग स्वेच्छासे स्वीकार नही किया था—यह वह कुछ बलपूर्वक कहसकती थी । परस्थितियों

ने बाध्य करके उससे ऐसा कराया। परिस्थितियोंकी दास थी वह। अब दूसरा मार्ग भी उसके सामने खुला है—उसने सोचा—क्यों न वह उसे स्वीकार करले? आखिर जिस मार्गपर वह चलरही थी स्वय उससे उसे किसी प्रकारका कभी राग न हुआ। कभी उसने स्वेच्छासे अपने क्रेताओं को शरीर अर्पित न किया था। फिर क्यो न करले वह स्वीकार उस सन्तोषप्रद पावन अन्तिम मार्गको? आखिर उसे कभी-न-कभी तो भुगतनाही है।

पर एकाएक मृत्युकी विभीषिका उसकी नजरोंके सामने नाचगई। सैंकडों-हजारोंको उसने अपने सामने दम तोडते देखा था—सैंकड़ों-हजारो बेसुध लाचार प्राणियोंको। पर सैंकड़ो-हजारों प्राणी वे बेसुध थे, लाचार। अगर कहीं उनके सामने भी चुननेकेलिए दो रास्ते होते, यदि उसका यौवन और लावण्य उनके भी होते तो? तो,—उसने कहा—वे मुझसे हरगिज न कहती, "मुझे भी कुछ काम लगादे, किसीके साए करदे।" मृत्यु भयानक है, अत्यन्त कष्टकरी। जिह्वा लटकाए वह आती है, जबडे खोले, दाढोंको उठाए, भयानक दाढोंको—कुत्तोंके बहाने।

"ना, ना, सुद्रिके, असम्भव है। मैं नहीं मरूँगी। मृत्युसे मुझे भय लगता है।" ··अनन्त गाँठे उसकी खुलगई थी। अमिता सोचरही थी, भयानक तेजीसे। और एक-एक विचार उसका बिच्छूके डङ्क-सा पैना था, जहरीला।

"पर कौन कहता है तुझे मरनेको पागल?" मुद्रिका कुछ समझ न सकी।

अमिता अपनेको सम्हाल न सकी। वह मुद्रिकाकी भुजाओंमे थी। और जबतक मुद्रिका उसके रूखे बालोको उछालती रही, अमिता चुप अस्वस्थ-सी पड़ी रही। पर आदमीका दिमाग एक बुरी बला है। जबतक वह पागल नहीं होजाता, कुछ सोचा ही करता है। फिर पागल होकर भी

वह कुछ कम नहीं सोचता, केवल चिन्त्य और शैली बदलजाते हैं। पर सोचता वह तबभी है और भयानक तेज़ीसे।

सब कह क्यो न दूँ—एकबार उसके जीमें आया। फिर सोचा—कह क्या दूँ। यहभी कोई कहदेनेकी बात है। फिर क्या जानते हैं वे उन छोटे अनन्त खतरोंको जिनके अन्दरसे होकर मैं गुजरी हूँ और जिनकी लम्बी कतारके आखीरमे मैंने अपना वर्त्तमान जीवन स्वीकार किया है। समझ सकेंगे ?

"पर", फिर विचार उसके अन्तस्तलको छूनेलगे, "सचमुचही सारी बातही सरल होजाय अगर मैं साफ-साफ़ स्वीकार करके उनसे सब सच-सच कहदूँ। क्या वे मुझे क्षमा न करेंगे ?"

उसकी विचारधारा धीरे-धीरे रुकनेलगी। धीरे-धीरे उसे ऐसा जान पड़नेलगा कि यह आखिर उसकी धारणाही धारणा है। बस अब कहाँ। और वह कुछ स्वस्थ हुई। उसकी मृत्युमे उसे भयका निर्वाण-सा होता जानपड़ा। पर उस बेचारेका पुराना प्यार और अमिताकेलिए उसके मनमे अत्यन्त उत्कण्ठा फिर नयी होकर जाग-सी पडी। उसके मनमे होनेलगा कि वह जीवित होता और एकबार लौटआता।

इस प्रकारकी दो विरोधी भावनाएँ उसके अन्तरमे डूबने-उतराने लगी। फिरभी इस चितनका एक फल हुआ, वह प्रकृतिस्थ होचली। वह सोचनेलगी—"अगर वे आए तो किस-किस प्रकारसे उन्हे भेंटेगी। असम्भव की सम्भावनामे उसे एकप्रकारकी गुदगुदी उठनेलगी। मुद्रिकाको उसने अङ्कमे भरलिया।"

उसे चूमते-चूमते उसने कहा—"जरा पानी पिला, दीदी।"

मुद्रिकाने जब उसे पानी पिलाया, वह औरभी स्वस्थ होगई। मुद्रिकाने उसे सहलाया, प्यार किया और उसे कुछदेर लिये बैठीरही।

फिर उसने पूछा—"अब कैसी है, अमिते ?"

"अब ठीक हूँ दीदी। कल्पनाने मुझे मारदिया था। वास्तवमे कोई आशंका नहीं। मुझ अभागिनीके देवता पृथ्वीपर अब नहीं हैं।" वह उत्तरमे बोली।

× × ×

गलीमे साधारणतया इस समय, शामके झुटपुटेमें, भारी बूटोकी अक्सर आवाज होनेलगती थी। आजभी हुई। नित्यकी भाँति किसी ग्राहकका खयालकर मुद्रिकाने कहा—

"अमिते, कामका वक्त है। अब तैयार होजाना चाहिए।"

"हाँ, वह तो भूलही गई थी।" वह बोली।

इसी समय दरवाजेपर ठक-ठक हुई।

"पहले दरवाजा खोल, कोई आया।" मुद्रिका बोली।

कमरेकी ओर जाते-जाते अमिता दरवाजेकी ओर बढगई। दरवाजा उसने खोला पर सामनेकी मूर्ति देख वह ठगी-सी रहगई।

उसके मुँहसे केवल निकला—"तुम !"

अगर मुद्रिकाने उसकी डाँवाडोल हालत देख दौड़कर उसे पकड न लिया होता तो निश्चय वह गिरपड़ती।

धीरे-धीरे मुद्रिकाने पूछा—"आप कौन हैं ?"

"यहां क्या मिदनापुरसे आयीहुई मित्र-परिवारकी कोई स्त्री रहती है ?" नवागतुकने पूछा, बिना मुद्रिकाकी बातका उत्तर दिए।

मुद्रिकाने जाना अभी अमिताको उसने पहचाना नहीं। पर उसने स्वय सैनिकको अटकलसे पहचाना। मिलते-मिलते अबतक वह जानगई थी उन सितारोंकी व्यवस्था और उन्हींसे उसने जाना कि नवागन्तुक कैप्टेन

है। अमिताने भी अपनी सज्ञा सर्वथा खोई न थी और उसने वह भयानक प्रश्न सुना। सन्ध्याका अन्धकार कबका गहरा होचुका था।

× × ×

"तुम्हारी पिस्तौल कहाँ है, स्वामी?" अमिताने पूछा।

"पिस्तौलका क्या करोगी, अमिते?"

"पिस्तौलका प्रयोग क्या यहसब सुनलेनेपर भी न करोगे? सैनिक तो सभी, सुना है, ऐसाही करते हैं।"

भावनाओंका वन्दी मैं भी हूँ, मेरी रानी। भोजन मैं भी जूठा नहीं खाता, नहीं खाना चाहता। पर अगर उसी जूठेपर मेरा जीवन निर्भर हो तो मैं जूठा भी खाऊँगा, अमिते! क्षण-क्षणके सङ्कटसे वचकर मैंने यह खूब जानलिया है, प्राण, कि जीवन कितना अमूल्य है, कितना अतुल, कितना मोहक।" सैनिकने पिस्तौल फेंकदी।

अमिता वसूकी गरदनपर फफकरही थी। उसकी पीली आँखे लम्बी पलकोंके नीचे ढकी थीं। उसके नयनोंका समुन्दर धीरे-धीरे जैसे सोतेसे जागा, हल्के-हल्के लहरानेलगा।

एकओर खड़ी मुद्रिकाने अपनी भीगी आँखे पोंछली।